

सूरदास दोहावली

भक्त कवि सूरदास के सुबोध एवं प्रेरणादायक पदों का अनुपम संग्रह





Sonu pandel

झुनक स्याम की पैजनियाँ।

जसुमति-सुत कौ चलन सिखावति, अँगुरी गहि-गहि दोउ जानियाँ॥

स्याम बरन पर पीत झँगुलिया, सीस कुलहिया चौतनियाँ।

जाकौ ब्रह्मा पार न पावत, ताहि खिलावति ग्वालिनियाँ॥

दूरि न जाहु निकट ही खेलौ, मैं बलिहारी रेंगनियाँ।

सूरदास जसुमति बलिहारी, सुतहिं खिलावति लै कनियाँ॥

(इसी संकलन से)

हास्य-व्यंग्य चुटकुले

- ॐ हंसना मत
- ॐ रंगीन चुटकुले
- ॐ चटपटे चुटकुले
- ॐ हंसी की फुलझड़ियां
- ॐ चुटकुलों की दुनिया
- ॐ हंसी का खजाना
- ॐ रंग-बिरंगे चुटकुले
- ॐ रंगारंग जोक्स
- ॐ माडर्न जोक्स
- ॐ प्रेमी-प्रेमिकाओं के जोक्स
- ॐ सबरंग चुटकुले
- ॐ पति-पत्नी के जोक्स
- ॐ सर्वोत्तम चुटकुले
- ॐ मजेदार चुटकुले
- ॐ रंगीन चुटकुले
- ॐ चटपटे चुटकुले
- ॐ आह भी वाह भी (हास्य व्यंग्य)
- ॐ मिडनाइट जोक्स

सूरदास दोहावली

(सूरदास के दोहे सरल भाषा सहित)

Vivek mishra

भक्तकवि-सूरदास



साधना पॉकेट बुक्स

रोशनारा रोड, दिल्ली 110 007

प्रकाशक

न्यू साधना पॉकेट बुक्स,

70 रोशनआरा प्लाजा

रोशनआरा रोड, दिल्ली-110 0007

32536004

एकमात्र वितरक

साहनी पब्लिकेशन्स,

4777, डॉ॰ मित्रा गली,

रोशनारा रोड, दिल्ली-7

दूरभाष : 23822006, 23820751

मोबाइल : 9350186641

भारतीय कापीराइट एक्ट के तहत इस पुस्तक में प्रकाशित सामग्री एवं रेखाचित्रों के सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं। कोई भी व्यक्ति/संस्था/समूह आदि इस पुस्तक की आंशिक या पूरी सामग्री किसी भी रूप में मुद्रित/प्रकाशित नहीं कर सकता। इस चेतावनी का उल्लंघन करने वाले कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि में उत्तरदायी होंगे। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र दिल्ली रहेगा।

Email : sahni@sahnipublications.com

Website : www.sahnipublications.com

संस्करण : 2008

सूरदास दोहावली (सूरदास के दोहे सरल भाषा सहित)

60- रुपये

श्री सूरदास हिन्दी साहित्य गगन के सूर्य तो हैं ही साथ ही बाल-वर्णन के क्षेत्र में भी सम्राट हैं। उनके दिव्य नेत्रों के सम्मुख श्याम नन्दन नित्य क्रीड़ा करते नज़र आते हैं, सूर कल्पना नहीं करते, वे जो देखते हैं, वर्णन करते हैं।

श्री वल्लभाचार्य के शिष्यों में प्रधान, सूर सागर के रचयिता, महात्मा सूरदास का जन्म रुनकता में, तो किसी-किसी के मत से इनका जन्म दिल्ली के पास सीही गांव में हुआ था। जो आगरा-मथुरा सड़क पर है। इनका जन्म का काल संवत् 1540 विक्रमी के आसपास माना जाता है। चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता के अनुसार, सूरदास सार्वभौम ब्राह्मण थे। कोई-कोई इन्हें ब्रह्मभट्ट कुल के मानते हैं। इनके पिता का नाम रामदास था। सूरदास नाम के साथ नेत्रहीन होने का शब्द इतना पर्याय हो गया है कि आज हम भारत में, सभ्यता के नाते किसी नेत्रहीन को देखकर या उसे सम्बोधित करने के लिए उसे अंधा या नेत्रहीन न कहकर 'सूरदास' कह देते हैं। श्रीकृष्ण भक्त, कवि सूरदास के बारे में इस बात पर एकमत नहीं हैं कि वे अन्धे थे या नहीं। कुछ विचारक उन्हें नेत्रहीन मानते हैं, कुछ नहीं। नेत्रहीन न मानने वालों का तर्क है कि श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन जिस अलंकारिक शब्दों के कवि सूरदास ने किया है, वह नेत्रहीन होने की अवस्था में कोई कर नहीं सकता। बालक के मुस्कराने पर उसके दांतों की छटा कैसी दिखती है, रंगों का संयोजन कैसे होता है, इसे जिसने देखा न हो वह उसका वर्णन क्योंकर कर सकता है।

यह भी कहा जाता है कि वे जन्म से अंधे नहीं थे, बाद में अंधे हो गये थे। इस कथन में सत्यता अधिक मिलती है। कुछ वर्ष की आयु तक भी बालक आंखों वाला हो तो उसे हंसने-मुस्कराने, भाव-भंगिमाओं और रंगों का ज्ञान हो जाता है।

कहा जाता है कि उस समय में धर्म के झगड़े में उनके पिता का इस्लाम धर्म के अनुयायियों से युद्ध हुआ था, इस युद्ध में सूरदास के छः भाई वीरगति को प्राप्त हुए थे। सूरदास निराश्रित होकर इधर-उधर

भटकने लगे। एक दिन ये कुएं में गिर पड़े और छः दिनों तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन भगवान् श्रीकृष्ण इनके सामने प्रकट हुए और इन्हें दृष्टि प्रदान कर अपने रूप का दर्शन कराया।

सूरदास ने वर मांगा कि जिन नेत्रों से मैंने आपका रूप देखा, उनसे और कुछ न देखूं और सदा आपका भजन करूं। इस वर को पाकर, कुएं से निकलकर वे पुनः नेत्रहीन हो गये। वहां से जाकर ब्रज में वास करने लगे। गऊ घाट पर आप श्री वल्लभाचार्य की शरण में आये। उनकी आज्ञा से इन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा को पदों में गाया। सूर-सागर में प्रधानतया भागवत दशम स्कन्ध की कथा ही ली गयी है। इसमें सवा लाख पद बताए जाते हैं। अब थोड़े ही पद उपलब्ध हैं।

सूरदास की उपासना सखा भाव की है। ये उद्धव के अवतार कहे जाते हैं। सागर में श्रीकृष्ण जन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यन्त विस्तार के साथ पदों में गायी गयी है। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग लेकर इस कृष्णभक्त कवि ने अत्यन्त मधुर और मनोरम पदों की झड़ी-सी बांध दी है। शृंगार और वात्सल्य का जैसा सरल और निर्मल स्रोत सूरसागर में बहा है, वैसा अन्यत्र नहीं दीख पड़ता।

श्रीकृष्ण के ये कितने परम भक्त थे इस बात को उनके दोहे से जाना जाता है।

बांह धुड़ाए जात हौ, निबल जानिकै मोहि।

हिरदै ते जब जादुगै, मरद दौंगे तोहि॥

जब उद्धव श्रीकृष्ण के बारे में, गोपिकाओं को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देती हैं तब गोपियां बीच में रोककर उनसे पूछती हैं—

निर्गुन कौन देस को बासी?

मधुकर हंसि समुझाय, सौंह दे बूझति सांच, न हाँसी।

देख न रूप, बरन जाके नहिं, ताको हमें बतावत॥

सूरदास जी का निधन संवत् 1620 के लगभग पारसोली गांव में हुआ। अपनी श्रीकृष्ण भक्ति के कारण ये अजर-अमर हो गये। सूरदास के रचे दोहों को पुस्तक में, श्रद्धाभाव से मन्त्र जपने के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

दूसरा किनारा बहुत दूर था, कि जलनासिका तक आ गया। लेकिन श्याम ने सिर पर से हुंकार की, यमुना ने संकेत के मर्म को समझ लिया, प्रभु के चरणों का स्पर्श करके उन्हें पार जाने जितना जल कर दिया। इससे वासुदेव जी पार चले गये। उन्होंने श्री नन्दरानी के पास ले जाकर श्रीकृष्ण को रख दिया, इससे देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ। सूरदासजी कहते हैं कि ये आनन्द कन्द तो ब्रजक्रीड़ा करने के लिए ही प्रकट हुए हैं।

गोकुल प्रगट भए हरि आइ।

अमर-उधारन असुर-संहारन, अंतरजामी त्रिभुवन राइ॥

माथें धरि बसुदेव जु ल्याए, नंद-महर-घर गए पहुँचाइ।

जागी महारि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाइ॥

गदगद कंठ, बोलि नहिं आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।

आवहु कंत, देख परसन भए, पुत्र भयौ, मुख देखौ धाइ॥

दौरि नंद गए, सुत-मुख देख्यौ, सौ सुख मापै बरनि न जाइ।

सूरदास पहिलैं ही माँग्यौ, दूध पियावन जसुमति भाइ॥

व्याख्या: देवताओं का उद्धार करने के लिए और असुरों का संहार करने के लिए ये अन्तर्यामी त्रिभुवननाथ श्रीहरि गोकुल में आकर प्रकट हुए हैं। श्री वासुदेव जी इन्हें मस्तक पर रखकर ले आये और ब्रजराज श्री नन्द जी के घर पहुँचा गये। माता यशोदा जी ने जागृत होकर पुत्र का मुख देखा, तब उनका अंग-अंग पुलकित हो गया, हृदय में आनन्द समाता नहीं था, कंठ गद-गद हो उठा, बोला तक नहीं जाता था, अत्यन्त हर्षित होकर उन्होंने श्री नन्द जी को बुलवाया कि स्वामी! पधारो! देवता प्रसन्न हो गये हैं। आपके पुत्र हुआ है। शीघ्र आकर उसका मुख देखो। श्री नन्दराय जी दौड़कर पहुँचे। पुत्र का मुख देखकर उन्हें जो आनन्द हुआ, वह मुझसे वर्णन नहीं किया जाता है। सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा! मैंने पहले ही धाय के रूप में दूध न्योछावर मांगी है।

राग रंधार

उठीं सखी सब मंगल गाइ।
 जागु जसोदा, तेरें बालक उपज्यो, कुँअर कन्हाइ॥
 जो तू रच्या-सच्यो या दिन कौं, सो सब देहि मँगाइ।
 देहि दान बंदीजन गुनि-गन, ब्रज-बासिनि पहिराइ॥
 तब हँसि कहत जसोदा ऐसैं, महरहिं लेहु बुलाइ।
 प्रगट भयौ पूरब तप कौ फल, सुत-मुख देखौ आइ॥
 आए नंद हँसत तिहिं औसर, आनंद उर न समाइ।
 सूरदास ब्रजबासी हरषे, गनत राजा-राइ॥

व्याख्या: सब सखियाँ मंगल गान करने लगीं और बोलीं—‘यशोदा रानी जाओ, कुँवर कन्हाई तुम्हारे पुत्र होकर प्रकट हुए हैं। इस दिन बंदी लोगों तथा अन्य गुणी जनों (नर, नर्तक, गायकादि) को दान दो। ब्रज की सौभाग्यवती नारियों को पहिरावा (वस्त्र-आभूषण) दो। तब यशोदा जी हंसकर इस प्रकार कहने लगीं—‘ब्रजराज को बुला लो। उनके पहले किये हुए तप का फल प्रकट हुआ है, वे आकर पुत्र का मुख देखें।’ यह समाचार पाकर नन्द जी आये, वे उस समय हंस रहे हैं, आनन्द उनके हृदय में समाता नहीं है। सूरदास जी कहते हैं—सभी ब्रजवासी हर्षित हो रहे हैं। वे आज राजा या कंगाल किसी की गणना नहीं करते। (मर्यादा छोड़कर आनन्द मना रहे हैं)।

राग रामकली

हौं इक नई बात सुनि आई।
 महरि जसौदा ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई॥
 द्वारैं भीर गोप-गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई।
 अति आनंद होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई॥
 नाचत बृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-कीच मचाई।
 सूरदास स्वामी सुख-सागर, सुंदर स्याम कन्हाई॥

व्याख्या: कोई गोपिका कहती है—मैं एक नवीन समाचार सुना आयी हूँ—ब्रजरानी श्री यशोदा के पुत्र उत्पन्न हुआ है। घर-घर में बधाई, मंगलगान हो रहे हैं। ब्रजराज के द्वार पर गोप-गोपियों की भीड़ लगी है। आज के उनके महत्त्व का वर्णन नहीं हो सकता। गोकुल में अत्यन्त आनन्द मनाया जा रहा है। वहाँ की सारी पृथ्वी रत्नों से ढंक गयी है। सभी वृद्ध, तरुण और बालक नाच रहे हैं। उन्होंने गोरस (दूध, दही, मक्खन) की कीचड़ मचा रखी है। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी श्यामसुन्दर कन्हाई सुख के समुद्र हैं। (इनके गोकुल आने से वहाँ आनन्दमय-महोत्सव तो होगा ही।)

हाँ सखि, नई चाह इक पाई।

ऐसे दिननि नंद कैं सुनियत, उपज्यौ पूत कन्हाई॥

बाजत पनव-निसान पंचबिध, रुंज-मुरज सहनाई।

महर-महरि ब्रज-हाट लुटावत, आनंद उर न समाई॥

चलौ सखी, हमहूँ मिलि जैऐ, नैकु करौ अतुराई।

कोउ भूषन पहिर्यौ, कोउ पहिरति, कोउ वैसहिं उठि धाई॥

कंचन-थार दूब-दधि-रोचन, गावति चारु बधाई।

भाँति-भाँति बनि चलीं जुवति जन, उपमा बरनि न जाई॥

अमर बिमान चढ़े सुख देखत, जै-धुनि-सब्द सुनाई।

सूरदास प्रभु भक्त-हेत-हित, दुष्टनि के दुखदाई॥

व्याख्या: कोई गोपी कहती है—‘सखी मैंने एक नवीन बात सुनी है कि इन्हीं दिनों ब्रजराज श्री नन्द जी के पुत्र उत्पन्न हुआ है जिसे सब लोग कन्हैया कहते हैं। वहाँ नगाड़े, ढोल, मृदंग, शहनाई आदि पांचों प्रकार के बाजे बज रहे हैं। ब्रजराज और ब्रजरानी आज ब्रज का पूरा बाजार उपहारों में लुटाये दे रहे हैं, उनके हृदय में आनन्द समाता नहीं है। इसलिए सखी तनिक शीघ्रता करो। हम सब भी एकत्र होकर वहाँ चलें। किसी ने आभूषण पहिन लिया, कोई पहिनने लगी और कोई जैसे थी वैसे ही उठ कर दौड़ पड़ी। स्वर्ण के थाल में दूध, दही तथा गोरोचन लिये बधाई के सुन्दर गीत गाती हुई ब्रज की युवतियाँ नाना प्रकार के

करके चल पड़ीं, उनकी उपमा का तो वर्णन नहीं किया जा सकता। देवता विमानों पर चढ़कर इस आनन्द को देख रहे हैं, उनके जय-जयकार करने का शब्द सुनाई पड़ रहा है। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे प्रभु भक्तों के लिए हितकारी और दुष्टों के लिए दुःखदायक, उनका विनाश करने वाले हैं।

राग आसावरी

ब्रज भयौ महर कैं पूत, जब यह बात सुनी।
 सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल नगर-गुनी॥
 अति पूरन पूरे पुण्य, रोपी सुथिर थुनी।
 ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि, कीन्हीं बेद-धुनी॥
 सुनि धाई सब ब्रज नारि, सहज सिंगार किये।
 तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये॥
 कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये।
 कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल-साज लिये॥
 सुभ स्रवननि तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही।
 सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही॥
 मुख मंडित रोरी रंग, सेंदुर माँग छुही।
 उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरंग सुही॥
 ते अपनै-अपनै मेल, निकसीं भाँति भली।
 मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिंजरा तोरि चली॥
 गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली।
 मनु भोर भएँ रबि देखि, फूलीं, कमल-कली॥
 पिय पहिलैं पहुँचीं जाइ अति आनंद भरीं।
 लइँ भीतर भुवन बुलाइ सब सिसु पाइ परी॥
 इक बदन उधारि निहारि, देहिं असीस खरी।
 चिरजीवो जसुदा-नंद, पूरन काम करी॥
 धनि दिन है, धनि ये राति, धनि-धनि पहर घरी।
 धनि-धन्य महरि की कोख, भाग-सुहाग भरी॥

जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी।
 थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी॥
 सुनि ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए।
 गुहि गुंजा घसि बन-धातु, अंगनि चित्र ठए॥
 सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए।
 डफ-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नंद-भवन गए॥
 मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही।
 मनु बरषत भादौ मास, नदी घृत-दूध बही॥
 जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं।
 सब आनंद-मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं॥
 इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परै।
 इक आपु आपुहीं माहिं, हँसि-हँसि मोद भरै॥
 इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करै।
 इक दधि-गोरोचन-दूब, सब कै सीस धरै॥
 तब न्हाइ नंद भए ठाढ, अरु कुस हाथ धरे।
 नांदीमुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे॥
 घसि चंदन चारु मँगाइ, बिप्रनि तिलक करे।
 द्विज-गुरु-जन कौं पहिराइ, सब कै पाइ परे॥
 तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं।
 जे चरहिं जमुन कै तीर, दूनै दूध चढ़ीं॥
 खुर ताँबे, रूपै पीठि, सोनै सीग मढ़ीं।
 ते दीन्हिं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ीं।
 सब इष्ट मित्र अरु बंधु, हँसि-हँसि बोलि लिये।
 मथि मृगमद-मलय-कपूर, माथै तिलक किये॥
 उर मनि-माला पहिराइ, बसन बिचित्र दिये।
 दै दान-मान-परिधान, पूरन-काम किये॥
 बंदीजन-मागध-सूत, आँगन-भौन भरे।
 ते बोलै लै-लै नाउँ, नहिं हित कोउ बिसरे॥

मनु बरषत मास अषाढ़, दादुर-मोर ररे।
 जिन जो जाँच्यौ सोइ दीन, अस नँदराइ ढरे॥
 तब अंबर और मँगाइ, सारी सुरँग चुनी।
 ते दीन्हीं बधुनि बुलाइ, जैसी जाहि बनी॥
 ते निकसीं देति असीस, रुचि अपनी-अपनी।
 बहुरीं सब अति आनंद, निज गृह गोप-धनी॥
 पुर घर-घर भेरि-मृदंग, पटह-निसान बजे।
 बर बारनि बंदनवार, कंचन कलस सजे॥
 ता दिन तैं वे ब्रज लोग, सुख-संपत्ति न तजे।
 सुनि सबकी गति यह सुर, जे हरि-बरन भजे॥

ॐ क्ल; ॥ ब्रज में श्री कृष्णराज के पुत्र हुआ है, जब यह बात सुनाई पड़ी, तब इसे सुनकर गोकुल-नगर के सभी गुणवान् लोग आनन्दमग्न हो गये। उन्होंने माना कि सभी पुण्य पूर्ण हो गये और उनको आत्यन्तिक फल प्राप्त हो गया, जिससे स्थिर मंगल स्वस्थ स्थिति हुआ अर्थात् ब्रजराज का वंश चलने से ब्रज को आधार स्तम्भ मिल गया। ग्रह, लग्न, नक्षत्र तथा समय का विचार करके वेद-पाठ (जातकर्म संस्कार) किया गया। यह समाचार पाते ही ब्रज की सभी नारियां स्वाभाविकशृंगार किये हुए (नन्दभवन) दौड़ पड़ीं। शरीर पर उन्होंने नवीन वस्त्र धारण कर रखे थे, नेत्रों में काजल लगाये थे, कंचुकी (चोली) कसकर बाँधी थी, ललाट पर तिलक (बिंदी) लगायी थी। हृदय पर हार शोभित थे, हाथों में कंकण पहिने थे और भगल द्वयों से सुसज्जित स्वर्ण थाल लिये थीं। सुन्दर कानों में चंचल कुंडल थे, वेणियां ढीली गुंथी हुई थीं, जिससे सिर में गुंथे पुष्प इस प्रकार उत्तम भूमि पर वर्षा-सी करते गिर रहे थे। मानो मेघ से फुहारें पड़ रही हों। मुख रोली के रंग से शोभित था और मांग में सिंदूर भरा था। (आनन्द के मारे) वक्षस्थल से उड़ते हुए आंचल को न जान नहीं पाती थीं। उनकी साड़ियां सुन्दर सुहावने रंग वाली थीं। वे भली-भाँति अपने-अपने मेल की सखियों के साथ इस प्रकार निकलीं मानो लालमुनियां पक्षियों की पंक्ति पिंजड़े को

तोड़कर चली जा रही हो। दस-पांच सखियां मिलकर ब्रजराज के गुण के मंगल-गीत इस प्रकार गा रही थीं, मानो प्रातःकाल होने पर सूर्य के दर्शन हेतु कमल की कलियां खिल गयी हों। अत्यन्त आनन्द में भरी वे गोपियां अपने स्वामियों से पहले ही नन्दभवन जा पहुँचीं। ब्रजरानी ने उन्हें भवन के भीतर प्रसूति गृह में बुला लिया, सब शिशु के पैरों पड़ीं। कोई शिशु का मुँह खोलकर देखकर सच्चा आशीर्वाद देने लगी कि यशोदानन्दन चिरंजीवी हो। तुमने हम सबको पूर्णकाम कर दिया। यह दिन धन्य है, यह रात्रि धन्य है, इस प्रहर और उसकी यह घड़ी भी धन्य-धन्य है। सौभाग्य और सुहाग से पूर्ण श्री ब्रजरानी की कोख अत्यन्त धन्य-धन्य है। जिसने ऐसे पुत्र को उत्पन्न किया। नन्दरानी तो सब सुख के फल फलित हुई, उन्होंने सारे परिवार की स्थिर (वंशधर को जन्म देकर) स्थापना कर दी, मन की वेदना को उन्होंने दूर कर दिया। गोपियों ने फिर बालकों को बुलाकर गायों को मंगाया और गुँजा (धुंधची) की माला से तथा वन की धातुओं (गेरू, रामरज आदि) को घिसकर उनके अंगों पर चित्र बनाकर उन्हें सजाया। सब गोप मस्तक पर दही और मक्खन से भरे बड़े-बड़े मटके लिये, नवीन गीत गाये, डफ, झांझ, मृदंग आदि बजाते नन्दभवन पहुँचे। वे एकत्र होकर नाचते थे, परस्पर विनोद करते थे। हल्दी मिला दही छिड़क रहे थे, मानो भाद्रपद के महीने में मेघ वर्षा कर रहे हों। वहाँ दूध और दही की नदियां बहने लगीं। जब जहाँ-जहाँ उनका मन चाहता था, वहीं वहीं एकत्र होकर वे नृत्य-गान तथा दधिकांदो (क्रीड़ा) करने लगते थे। सभी गोप आनन्दमग्न से किसी की परवाह नहीं करते थे। कोई दौड़कर श्रीनन्द जी के पास जाकर बार-बार उनके पैरों पड़ता है। कोई अपने आप में ही आनन्दपूर्ण होकर स्वतः हंस रहा है। कोई अपने आभूषण उतारकर उसे किसी को भी उपहार देते कोई संकोच नहीं करता और कोई सबके मस्तक पर दही, गोरोचन तथा दूर्वा डाल रहा है। तब श्री नन्द जी स्नान करके हाथों में कुश लेकर खड़े हुए, नान्दीमुख श्राद्ध करके, पितरों की पूजा करवाकर उनके हृदय का शोक दूर कर दिया। उत्तम चंदन घिसवाकर मंगवाया और उससे ब्राह्मणों को तिलक लगाया। ब्राह्मणों तथा

गुरुजनों के वस्त्राभूषण पहिनाकर सबके पैर पड़े अर्थात् सबके चरणस्पर्श कर प्रणाम किया। वहाँ बछड़े वाली सुपुष्ट तरुणी गायेँ इतनी मंगायीं जो गिनी नहीं जा सकती थीं। वे गायेँ यमुना किनारे चरा करती थी। उनके खुर ताँबे से, पीठ चांदी से तथा सींग सोने से मढ़ी थीं। वे गाय उन अनेक ब्राह्मणों को दान कर दी गईं। हर्षित होकर ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया। फिर हंसते हुए सब इष्ट-मित्र तथा बन्धु-बान्धवों को बुला लिया और कस्तूरी-कपूर मिलाकर चंदन घिसकर उनके मस्तक पर तिलक लगाया, उनके गले में मणियों की मालाएं पहिनाकर अनेक रंगों के वस्त्र उन्हें भेंट किये। उपहार देकर, सम्मान करके वस्त्राभूषण पहिनाकर उन्हें पूर्णतः सन्तुष्ट कर दिया। बंदीजन, मगध, सूत आदि की भीड़ आंगन में और भवन में भरी हुई थी। श्री नन्द जी उनमें से किसी को भूले नहीं। सबको दान-मान से सत्कृत किया। वे लोग नाम ले-लेकर यशोगान कर रहे थे। मानो आषाढ़ महीने में वर्षा प्रारम्भ होने पर मेंढक और मयूर ध्वनि करते हों। श्री नन्दराय जी ऐसे द्रवित हुए कि जिसने जो कुछ मांगा उसे वही दिया। फिर सुन्दर रंगों वाली चुनी हुई साड़ियों की और ढेरी मंगायी और वधुओं (सौभाग्यवती स्त्रियों) को बुलाकर जो जिसके योग्य थी, उसे वह दी। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आशीर्वाद देती हुई वे नन्दभवन से निकलीं अत्यन्त आनन्दभरी वे गोपियां अपने-अपने घर लौटीं। नगर में प्रत्येक घर में भेरी, मृदंग, पटह (डफ) आदि बाजे-बजने लगे। श्रेष्ठ बंदनवारें बांधी गयीं और सोने के कलश सजाये गये। उसी दिन से उन ब्रज के लोगों को सुख और सम्पत्ति कभी छोड़ती नहीं। सूरदास जी कहते हैं जो श्रीहरि के चरणों का भजन करते हैं, उन सबकी यही गति सुनी गयी है। वे नित्य सुख-सम्पत्ति से समन्वित रहते हैं।

राग धनाश्री

आजु नंद के द्वारैं भीरा।

इक आवत, इक जात विदा है, इक ठाढ़े मंदिर कैं तीरा॥

कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरिर।

एकनि कौं गौ-दान समर्पत, एकनि कौं पहिरावत चीर॥

एकनि कौं भूषन पाटंबर, एकनि कौं जु देत नग हीर।
 एकनि कौं पुहुपनि की माला, एकनि कौं चंदन घसि नीर॥
 एकनि माथैं दूब-रोचना, एकनि कौं बोधति दै धीर।
 सूरदास धनि स्याम सनेही, धन्य जसोदा पुन्य-सरीर॥

व्याख्या: आज नन्द जी के द्वार पर भीड़ हो रही है। कोई आ रहा है, कोई विदा होकर जा रहा है और कोई भवन के समीप खड़ा है। कोई गोपिका केसर का तिलक लगा रही है, कोई शरीर में कंचुकी पहिन रही है। श्री नन्द जी किसी को गोदान दे रहे हैं, किसी को वस्त्र पहिना रहे हैं, किसी को आभूषण और पीताम्बर दे रहे हैं। किसी को मणियां और हीरे देते हैं, किसी को पुष्पों की माला पहिनाते हैं, किसी को स्वयं जल में घिसकर चन्दन लगाते हैं, किसी के मस्तक पर दूर्वा और गोरोचन डालते हैं और किसी को धैर्य दिलाकर समझाते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि ये श्यामसुन्दर के प्रेमी (गोप-गोपी) धन्य हैं और पवित्र देहधारिणी माता यशोदा धन्य हैं।

राग-गौरी

बहुत नारि सुहाग-सुंदरि और घोष कुमारि।
 सजन-प्रीतम-नाम लै-लै, दै परसपर गारि॥
 अनंद अतिसै भयौ घर-घर, नृत्य ठाँवहिं ठाँव।
 नंद-द्वारैं भेंट लै-लै उमह्यौ गोकुल गाँव॥
 चौक चंदन लीपि कै, धरि आरती संजोड़।
 कहति घोष-कुमारि, ऐसौ अनंद जौ नित होड़॥
 द्वार सथिया देति स्यामा, सात सींक बनाड़।
 नव किसोरी मुदित है-है गहति जसुदा-पाड़॥
 करि अलिंगन गोपिका, पहिरैं अभूषन-चीर।
 गाड़-बच्छ सँवारि ल्याए, भई ग्वारनि भीर॥
 मुदित मंगल सहित लीला करें गोपी-ग्वाल।
 हरद, अच्छत, दूब, दधि लै, तिलक करें ब्रजबाल॥

एक-एक न गनत काहूँ, इक खिलावत गाइ।
 एक हेरी देहिं, गावहिं, एक भेंटहिं धाइ॥
 एक बिरध-किसोर-बालक, एक जोबन जोग।
 कृष्ण-जन्म सु प्रेम-सागर, क्रीड़ैं सब ब्रज-लोग॥
 प्रभु मुकुन्द कै हेत नूतन होहिं घोष-बिलास।
 देखि ब्रज की संपदा कौं, फूलै सूरदास॥

व्याख्या: बहुत-सी सौभाग्यवती स्त्रियां और गोपकुमारियां एक-दूसरे के प्यारे पति का नाम ले-लेकर गाली गा रही हैं। गोकुल के घर-घर में अतिशय आनन्द हो रहा है। स्थान-स्थान पर नृत्य हो रहा है। पूरा गोकुल नगर ही भेंट ले-लेकर श्री नन्द जी के द्वार पर उमड़ पड़ा है। आंगन को चन्दन से लीपकर आरती सजा कर रखी गई है। गोपकुमारियां कहती हैं—‘यदि ऐसा आनन्द नित्य हुआ करे....’। युवतियां सात सीकों से सजाकर द्वार पर स्वस्तिक चिह्न बना रही हैं। नव किशोरियां आनंदित होकर बार-बार श्री यशोदा जी के पैर पकड़ लेती हैं। गोपिकाओं ने श्री यशोदा जी को आलिंगन करके उनसे उपहार में मिले, आभूषण तथा वस्त्र पहिन लिये। दूसरी ओर गाय तथा बछड़ों को सजाकर ले आये, गोपों की भीड़ एकत्र हो गयी। सभी गोपियां और गोप प्रमुदित हैं। अनेक प्रकार की मंगल-क्रीड़ा कर रहे हैं। गोपियां एक-दूसरे को हल्दी, अक्षत, दूर्वा और दही लेकर तिलक लगा रही हैं। आज कोई किसी की भी परवाह नहीं करता है, कोई गायों को खिला रहे हैं, कोई हेरी-हेरी कहकर पुकारते हैं, कोई गाते हैं, कोई दौड़कर दूसरे को भेंट रहे हैं। क्या वृद्ध, क्या युवक, क्या बालक और क्या तरुण सभी ब्रज के लोग श्रीकृष्ण जन्म से प्रेम-सागर में ही मग्न क्रीड़ा कर रहे हैं। प्रभु मुकुन्द के जन्मोपलक्ष्य में गोपों में होने वाले नये-नये क्रीड़ा-कौतुक हो रहे हैं। प्रभु की यह सम्पत्ति देखकर सूरदास प्रफुल्लित हो रहे हैं।

राग धनासरी

आजु बधायौ नंदराइ कै, गावहु मंगलचार।
 आई मंगल-कलस साजि कै, दधि फल नूतन-डार॥

उर मेले नंदराइ कै, गोप-सखनि मिलि हार।
 मागध-बंदी-सूत अति करत कुतूहल बार॥
 आए पूरन आस कै, सब मिलि देत असीस।
 नंदराइ कौ लाड़िलौ, जीवै कोटि बरीस॥
 तब बज्र-लोगनि नंद जू, दीने बसन बनाइ।
 ऐसी सोभा देख कै, सूरदास बलि जाइ॥

व्याख्या: आज श्री नन्दराय जी के यहाँ मंगल-बधाई बज रही है। सब मंगलगान करो। गोपियां मंगल-कलश सजाकर दही, फल तथा आम की नवीन डालियां लिये आयीं। गोप-सखाओं ने एकत्र होकर श्री नन्दराय जी के गले में पुष्पों की माला पहनायीं। सूत, मगध, बंदीजन, बार-बार अनेक प्रकार के विनोद कर रहे हैं। जो भी आये ब्रजराज ने उनकी आशाएं पूर्ण कीं। सभी मिलकर आशीर्वाद दे रहे हैं कि श्रीनन्दराय जी के लाड़ले लाल करोड़ों वर्ष जीवें। श्री नन्द जी ने सभी ब्रज के लोगों को सजाकर वस्त्र दिये। ऐसी शोभा को देखकर सूरदास अपने को ही न्योछावर करता है।

राग गौरी

धनि-धनि नंद-जसोमति, धनि जग पावन रे।
 धनि हरि लियौ अवतार, सु धनि दिन आवन रे॥
 दसएँ मास भयौ पूत, पुनीत सुहावन रे।
 संख-चक्र-गदा-पद्म, चतुरुभुज भावन रे॥
 बनि ब्रज-सुंदरि चलीं, सु गाइ बधावन रे।
 कनक-थार रोचन-दधि, तिलक बनावन रे॥
 नंद-धरहिं चलि गई, महरि जहाँ पावन रे।
 पाइनि परि सब बधू, महरि बैठावन रे॥
 जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे।
 भलैं सु दिन भयौ पूत, असर अजरावन रे॥

जुग-जुग जीवहु कान्ह, सबनि मन भावन रे।
 गोकुल-हाट-बजार करत जु लुटावन रे॥
 घर-घर बजै निसान, सु नगर सुहावन रे।
 अमर-नगर उत्साह, अप्सरा-गावन रे॥
 ब्रह्म लियौ अवतार, दुष्ट के दावन रे।
 दान सबै जन देत, बरषि जनु सावन रे॥
 मागध, सूत, भाँट, धन लेत जुरावन रे।
 चोवा-चंदन-अबीर, गलिनि छिरकावन रे॥
 ब्रह्मादिक, सनकादिक, गगन भरावन रे।
 कस्यप रिषि सुर-तात, सु लगन गनावन रे॥
 तीनि भुवन आनंद, कंस-डरपावन रे।
 सूरदास प्रभु जनमे, भक्त-हुलसावन रे॥

व्याख्या: श्री नन्द जी धन्य हैं, माता यशोदा धन्य हैं, पवित्र जगत् धन्य हैं (जिसमें श्री हरि प्रकट हुए) थे दम्पति परम धन्य हैं। श्रीहरि का अवतार लेना धन्य है जिस दिन वे अवतरित हुए वह उनके आने वाला दिन धन्य है। श्री यशोदा जी को दसवें दिन पवित्र और सुन्दर पुत्र हुआ। शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये चतुर्भुज रूप प्रकट होते समय बड़ा ही प्रिय था। ब्रज की सुन्दरियां शृंगार करके मंगल बधाई गाने चलीं। स्वर्ण के थालों में तिलक करने के लिए वे दही और गोरोचन लिये थीं। वे उस नन्दभवन में गई जहाँ परम पवित्र श्री ब्रजरानी थीं। सब गोपवधुएँ उनके पैरों पड़ीं, ब्रजरानी ने उन्हें बैठाया। वे बोली, 'यशोदाजी! तुम्हारी यह कोख धन्य है, जहाँ साक्षात् भगवान् ने निवास किया। तुम्हारा यह देवताओं को भी अभय (उज्ज्वल) करने वाला पुत्र बड़े उत्तम दिन उत्पन्न हुआ है। यह सभी के मन को प्रिय लगने वाला कन्हाई युग-युग जीवे। गोकुल के मार्गों में, बाजारों में सब लोग न्योछावर लुटा रहे हैं। घर-घर बाजे बज रहे हैं, पूरा नगर सुन्दर सुहावना हो रहा है। देवलोक में भी बड़ा उत्साह है, आप्सराएँ गान कर रही हैं कि दृष्टों का दलन करने वाले साक्षात् परब्रह्म ने अवतार धारण कर

लिया। जैसे श्रावण में वर्षा हो रही हो, इस प्रकार सभी लोग दान कर रहे हैं। मागध, सूत, भार लोग धन एकत्र कर रहे हैं। गलियों में चोवा, चन्दन और अबीर छिड़की जा रही है। आकाश ब्रह्मादिक देवताओं तथा सनकादि ऋषियों से कट गया है। देवताओं के पिता महर्षि कश्यप उत्तम लग्न की गणना कर रहे हैं। तीनों लोकों में आनन्द हो रहा है, किन्तु कंस के लिए भय का कारण हो गया है। सूरदास जी कहते हैं—भक्तों को उल्लासित करने वाले मेरे प्रभु ने अवतार लिया है।

राग कल्याण

सोभा-सिंधु न अंत रही री।

नंद-भवन भरि पूरि उमंगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री॥

देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेचति फिरति दही री।

कहाँ लगि कहौ बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री॥

जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं, उपजी ऐसी सबनि कही री।

सूरस्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री॥

व्याख्या: आज शोभा के समुद्र का पार नहीं रहा। नन्दभवन में वह पूर्णतः भरकर अब ब्रज की गलियों में उमड़ता बहता जा रहा है। आज गोकुल में जाकर देखा कि (शोभा की आधि देवता लक्ष्मी ही हैं।) घर-घर दही बेचती घूम रही हैं। अनेक प्रकार से बनाकर कहां तक कहूं। सहस्रों मुखों से वर्णन करने पर भी पार नहीं मिलता है। सूरदास जी कहते हैं कि सभी ने इसी प्रकार कहा है कि श्री यशोदाजी की कोख रूपी अथाह सागर में मेरे प्रभु रूपी इन्द्रनीलमणि उत्पन्न हुई है। जिसे ब्रजयुवतियों ने हृदय से लगाकर पकड़ रखा है। (हृदय में धारण कर लिया है)।

राग काफी

आजु हो निसान बाजै, नंद जू महर के।

आनंद-मगन नर गोकुल सहर के॥

आनंद भरी जसोदा उमँगि अंग न माति, अनंदित भई गोपी गावति चहर के।
 दूब-दधि-रोचन कनक-थार लै-लै चली, मानौ इंद्र-बधू जुरी पौतिनि बहर के॥
 आनंदित ग्वाल-बाल, करत विनोद ख्याल, भुज भरि-भरि धरि अंकम महर के।
 आनंद-मगन धेनु स्रवैं थनु पय-फेनु, उमँग्यौ जमुन-जल उछलि लहर के॥
 अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन-वेली प्रफुलित कलिनि कहर के।
 आनंदित बिप्र, सूत, मागध, जाचक-गन, उमँगि असीस देत सब हित हरि के॥
 आनंद-मगन सब अमर गगन छाए पुहुप विमान चढ़े पहर-पहर के।
 सूरदास प्रभु आइ गोकुल प्रगट भए, संतनि हरष, दुष्ट-जन-मन धर के॥

व्याख्या: आज ब्रजराज श्री नन्द जी के घर मंगल बाजा बज रहा है। गोकुल नगर के सभी लोग आनन्दमग्न हैं। आनन्दपूर्ण श्री यशोदाजी उमंग के मारे अपने आप में समाती नहीं हैं। गोपियां आनन्द से उल्लसित होकर मंगलगान कर रही हैं। सोने के थालों में दूर्वा, दही तथा गोरोचन लिये हुए इस प्रकार चली जा रही हैं, मानो इन्द्रवधूठियों की पंक्ति एकत्र होकर बाहर निकल पड़ी। ग्वालबाल आनन्दित होकर अनेक विनोद विचार करते हैं और बार-बार श्री ब्रजराज की दोनों भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लेते हैं। गायें आनन्दमग्न होकर थनों से फेनयुक्त दूध गिरा रही हैं। उमंग से यमुना जी के जल में ऊँची लहर उछल रही है जो वृक्ष पूरे सूख गये थे, उनमें भी पत्ते अंकुरित हो गये हैं। उनकी लतायें प्रफुल्लित होकर कलियों की राशि बन गई हैं। ब्राह्मण सुत मागध तथा याचकवृन्द आनन्दित होकर सभी उमंगपूर्वक श्री हरि के हित के लिए आशीर्वाद दे रहे हैं। आनन्दमग्न सभी देवता वस्त्राभूषण पहिनकर पुष्पसज्जित विमानों पर बैठे हैं। आकाश में छाये (फैले) हुए हैं। सूरदास के स्वामी गोकुल में प्रकट हो गये हैं। इससे संत पुरुष को प्रसन्नता हो रही है और दुष्टों के हृदय (भय से) धड़कने लगे हैं।

(माई) आजु हो बधायौ बाजै नंद गोप-राइ कै।

जदुकुल-जादौराइ जनमे हैं आइ को॥

आनंदित गोपी-ग्वाल नाचैं कर दै-दै ताल, अति अहलाद भयौ जसुमति माइ कै।
 सिर पर दूब धरि, बैठे नंद सभा-मधि, द्विजनि कौं गाइ दीनी बहुत मँगाइ कै॥
 कनक कौ माट लाइ, हरद-दही मिलाइ, छिरकैं परसपर छल-बल धाइ कै।
 आठैं कृष्ण पच्छ भादौ, महर कैं दधि कादौ, मोतिनि बँधायौ बार महल मैं जाइ कै॥

ढाढ़ी और ढाढ़िनि गावैं, ठाढ़ै हुरके बजावैं, हरषि असीस देत मस्तक नवाइ कै।
जोड़-जोड़ माँग्यौ जिनि, सोइ-सोइ पायो तिनि, दीजै सूरदास दर्स भक्तनि बुलाइ कै॥

व्याख्या: सखि आज गोपराज श्री आनन्द जी के यहाँ बधाई के बाजे बज रहे हैं। श्री यदुनाथ यदुकुल में आकर प्रकट हो गये हैं। गोपियां और गोप आनन्दित होकर ताल देकर नृत्य कर रहे हैं। माता यशोदा को अत्यन्त आह्लाद हुआ है। श्री नन्द जी मस्तक पर दूर्वा धारण करके गोपियों की सभा में बैठे हैं। उन्होंने बहुत-सी गाय मांगकर ब्राह्मणों को दान की। (गोप) सोने के मटकों में दही मिलाकर ले आये और दौड़-दौड़कर एक-दूसरे पर छिड़क रहे हैं। भद्रापद महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी है। आज ब्रजराज के यहां दधिकादों हो रहा है। अपने भवन में जाकर उन्होंने मोतियों का बंदनवार बंधवाया है। ढाढ़ि और ढाढ़िनें मंगल गा रही हैं। वे खड़े-खड़े सिंगे बजा रही हैं और हर्षित होकर मस्तक झुकाकर आशीर्वाद दे रहे हैं। जिस-जिसने जो कुछ मांगा, उसने वही-वही पाया। सूरदास जी कहते हैं प्रभु भक्तों को बुलाकर उन्हें भी दर्शन दे दीजिए।

राग जेंट श्री

आजु बधाई नंद कै माई। ब्रज की नारि सकल जुरि आई॥
सुंदर नंद महर कै मंदिर। प्रगट्यौ पूत सकल सुख-कंदर॥
जसुमति-ढोटा ब्रज की सोभा। देखि सखी, कछु औरें गोभा॥
लछिमी-सी जहँ मालिनि बोलै। बंदन-माला बाँधत डोलै॥
द्वार बुहारति फिरति अष्ट सिधि। कौरनि सथिया चीतति नवनिधि॥
गृह-गृह तैं गोपी गवनीं जब। रंग-गलिनि बिच भीर भई तब॥
सुबरन-थार रहे हाथनि लसि। कमलनि चढ़ि आए मानौ ससि॥
उमंगी प्रेम-नदी-छबि पावै। नंद-सदन-सागर कौं धावै॥
कंचन-कलस जगमगैं नग के। भागे सकल अमंगल जग के॥
डोलत ग्वाल मनौ रन जीते। भए सबनि के मन के चीते॥
अति आनंद नंद रस भीने। परबत सात रतन के दीने॥

कामधेनु तैं नैंकु न हीनी। द्वै लख धेनु द्विजनि कौं दीनी॥
नंद-पौरि जे जाँचन आए। बहुरौ फिरि जाचक न कहाए॥
घर के ठाकुर कै सुत जायौ। सूरदास तब सब सुख पायौ॥

व्याख्या: सखी! आज नंद जी के यहाँ बधाई बज रही है। ब्रज की सभी नारियां आकर एकत्र हो गयी हैं। ब्रजराज श्री नन्दजी के सुन्दर भवन में सभी सुखों का निधान पुत्र प्रकट हुआ है। श्री यशोदाजी का पुत्र तो ब्रज की शोभा है। साख देखो उनकी कान्ति ही कुछ और (आलौकिक) ही है। जहाँ लक्ष्मी जी देवियां मोलिनी कहलाती हैं। और बन्दनवार में महिलाएं बंधती घूमती हैं। आठों सिद्धियां द्वार पर झाड़ू लगाती हैं। नौवों निधियां द्वार भित्तियों पर स्वस्तिक के चित्र बनाती हैं। जब गोपियां घर-घर से चलीं तब अनुरागमयी वीथियों में भीड़ हो गई। उनके घरों में सोने के थाल ऐसे शोभा दे रहे थे, मानो अनेकों चन्द्रमा कमलों पर बैठ-बिठाकर आ गये हों। (ये गोपियां) प्रेम से उमड़ी नदियों के समान शोभा दे रही हैं। जो नन्दभवन रूपी समुद्र की ओर दौड़ती जा रही हैं। भवनों पर मणिजड़ित स्वर्णकलश जगमगा रहे हैं। आज विश्व के समस्त अमंगल भाग गये। गोप इस प्रकार घूम रहे हैं मानो युद्ध में विजयी हो गये हों सबकी मनोअभिलाषा आज पूरी हो गयी है। श्री नन्द जी ने अत्यन्त आनन्दरस से आर्द्र होकर रत्न के सात पर्वत दान किये। जो गायें कामधेनु से तनिक भी हटकर नहीं थीं, ऐसी दो लाख गायें ब्राह्मणों को दान कीं। जो आज नन्द जी के द्वार पर मांगने आ गये, फिर कभी वे याचक नहीं कहे गये। उनको इतना धन मिला कि फिर कभी मांगना नहीं पड़ा। सूरदास जी कहते हैं—मेरे घर के (निजी) स्वामी (श्री नन्द जी) के जब पुत्र उत्पन्न हुआ, तब मैंने सुख पा लिया।

कनक-कटोरा प्रातहीं, दधि घृत सु मिठाई।
खेलत खात गिरावहीं, झगरत दोउ भाई॥
अरस-परस चुटिया गहैं, बरजति है माई।
महा ढीठ मानैं नहीं, कछु लहुर-बड़ाई॥

हँसि कै बोली रोहिनी, जसुमति मुसुकाई।
जगन्नाथ धरनीधरहिं, सूरज बलि जाई॥

व्याख्या: सुबह ही सोने के कटोरे में दही, मक्खन और उत्तम मिठाइयाँ लिये दोनों भाई खेल रहे हैं। खाते जाते हैं, कुछ गिराते जाते हैं और परस्पर झगड़ते भी हैं। झपटकर एक-दूसरे की चोटी पकड़ लेते हैं, मैया उन्हें मना करती है। माता रोहिणी ने हंस कर कहा—‘दोनों अत्यन्त ढीठ हैं। कुछ भी छोटे-बड़े का सम्बन्ध नहीं मानते।’ मैया यशोदा यह सुनकर मुस्कुरा रही हैं। सूरदास जी तो इन जगन्नाथ श्यामसुन्दर और धरणीधर बलराम जी पर बलिहारी जाता है।

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुपक सुकोमल रोटी॥
कत हौ आरि करत मेरे मोहन, तुम आँगन मैं लोटी?।
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीं, छाँड़ी यह मति खोटी॥
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपस्थौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ, हाथ लकुटिया छोटी॥

व्याख्या: गोपालराय दही और रोटी मांग रहे हैं। वे कहते हैं—‘मैया! अच्छी पकी हुई और खूब कोमल रोटी मुझे मक्खन के साथ दो। माता कहती हैं—‘मेरे मोहन! तुम आँगन में लोटकर मचलते क्यों हो, यह बुरा स्वभाव छोड़ दो। जो इच्छा हो, वो तुरन्त लो।’ निहोरा करके माता ने कलेऊ दिया और फिर मुख तथा अलकों में तेल लगाया। सूरदास जी कहते हैं कि अब कलेऊ करके हाथ में छोटी-सी छड़ी लेकर ये मेरे स्वामी खड़े हैं।

राग बिलावल

आजु गृह नंद महर कै बधाइ।
प्रात समय मोहन मुख निरखत, कोटि चंद-छबि पाइ॥
मिलि ब्रज-नागरि मंगल गावतिं, नंद-भवन मैं आइ।
देतिं असीस, जियौ जसुदा-सुत कोटिनि बरष कन्हाइ॥

अति आनंद बढ्यौ गोकुल मैं, उपमा कही न जाइ।
सूरदास धनि नंद की घरनी, देखत नैन सिराइ॥

आज ब्रजराज श्री नन्द जी के यहाँ बधाई बज रही है। करोड़ों चन्द्रमा के समान सुशोभित मोहन का मुख प्रातःकाल ही उन्होंने देखा है। ब्रज-नागरिकाएँ एकत्र होकर नन्द भवन में आकर मंगल गान कर रही हैं। वे आशीर्वाद देती हैं—‘यशोदा रानी का पुत्र कन्हाई करोड़ों वर्ष जीवे।’ गोकुल में अत्यन्त आनन्द उमड़ा है, उसकी उपमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सूरदास जी कहते हैं कि नन्द पत्नी धन्य हैं, उनके दर्शन करके ही नेत्र शीतल हो जाते हैं।

राग जैजैवंती

(माई) आजु तौ बधाइ बाजै मंदिर महर के।
फूले फिरैं गोपी-ग्वाल ठहर ठहर के॥
फूली फिरैं धेनु धाम, फूली गोपी अँग-अँग।
फूले-फरे तरबर आनंद लहर के॥
फूले बंदीजन द्वारे, फूले फूले बंदवारे।
फूले जहाँ जोई सोइ गोकुल सहर के॥
फूलैं फिरैं जादौकुल आनंद समूल मूल।
अंकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के॥
उमंगे जमुन-जल, प्रपुलित कुंज-पुंज।
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के॥
नृत्यत मदन फूले, फूली, रति अँग अँग।
मन के मनोज फूले हलधर वर के॥
फूले द्विज-संत-बेद, मिटि गयौ कंस-खेद।
गावत बधाइ सूर भीतर बहर के॥
फूली है जसोदा रानी, सुत जायौ साङ्गपानी।
भूपति उदार फूले भाग फरे घर के॥

हंसि कै बोली रोहिनी, जसुमति मुसुकाई।

जगन्नाथ धरनीधरहिं, सूरज बलि जाई॥

व्याख्या: सुबह ही सोने के कटोरे में दही, मक्खन और उत्तम मिठाइयां लिये दोनों भाई खेल रहे हैं। खाते जाते हैं, कुछ गिराते जाते हैं और परस्पर झगड़ते भी हैं। झपटकर एक-दूसरे की चोटी पकड़ लेते हैं, मैया उन्हें मना करती है। माता रोहिणी ने हंस कर कहा—‘दोनों अत्यन्त ढीठ हैं। कुछ भी छोटे-बड़े का सम्बन्ध नहीं मानते।’ मैया यशोदा यह सुनकर मुस्कुरा रही हैं। सूरदास जी तो इन जगन्नाथ श्यामसुन्दर और धरणीधर बलराम जी पर बलिहारी जाता है।

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी।

माखन सहित देहि मेरी मैया, सुपक सुकोमल रोटी॥

कत हौ आरि करत मेरे मोहन, तुम आँगन मैं लोटी?।

जो चाहौ सो लेहु तुरतहीं, छाँड़ी यह मति खोटी॥

करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपस्यौ अरु चोटी।

सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ, हाथ लकुटिया छोटी॥

व्याख्या: गोपालराय दही और रोटी मांग रहे हैं। वे कहते हैं—‘मैया! अच्छी पकी हुई और खूब कोमल रोटी मुझे मक्खन के साथ दो। माता कहती हैं—‘मेरे मोहन! तुम आँगन में लोटकर मचलते क्यों हो, यह बुरा स्वभाव छोड़ दो। जो इच्छा हो, वो तुरन्त लो।’ निहोरा करके माता ने कलेऊ दिया और फिर मुख तथा अलकों में तेल लगाया। सूरदास जी कहते हैं कि अब कलेऊ करके हाथ में छोटी-सी छड़ी लेकर ये मेरे स्वामी खड़े हैं।

राग बिलावल

आजु गृह नंद महर कै बधाइ।

प्रात समय मोहन मुख निरखत, कोटि चंद-छबि पाइ॥

मिलि ब्रज-नागरि मंगल गावतिं, नंद-भवन मैं आइ।

देतिं असीस, जियौ जसुदा-सुत कोटिनि बरष कन्हाइ॥

अति आनंद बढ्यौ गोकुल मैं, उपमा कही न जाइ।
सूरदास धनि नंद की घरनी, देखत नैन सिराइ॥

आज ब्रजराज श्री नन्द जी के यहाँ बधाई बज रही है। करोड़ों चन्द्रमा के समान सुशोभित मोहन का मुख प्रातःकाल ही उन्होंने देखा है। ब्रज-नागरिकाएँ एकत्र होकर नन्द भवन में आकर मंगल गान कर रही हैं। वे आशीर्वाद देती हैं—‘यशोदा रानी का पुत्र कन्हाई करोड़ों वर्ष जीवे।’ गोकुल में अत्यन्त आनन्द उमड़ा है, उसकी उपमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सूरदास जी कहते हैं कि नन्द पत्नी धन्य हैं, उनके दर्शन करके ही नेत्र शीतल हो जाते हैं।

राग जैजैवंती

(माई) आजु तौ बधाइ बाजै मंदिर महर के।
फूले फिरैं गोपी-ग्वाल ठहर ठहर के॥
फूली फिरैं धेनु धाम, फूली गोपी अँग-अँग।
फूले-फरे तरबर आनंद लहर के॥
फूले बंदीजन द्वारे, फूले फूले बंदवारे।
फूले जहाँ जोई सोइ गोकुल सहर के॥
फूलैं फिरैं जादौकुल आनंद समूल मूल।
अंकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के॥
उमंगे जमुन-जल, प्रपुलित कुंज-पुंज।
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के॥
नृत्यत मदन फूले, फूली, रति अँग अँग।
मन के मनोज फूले हलधर वर के॥
फूले द्विज-संत-बेद, मिटि गयौ कंस-खेद।
गावत बधाइ सूर भीतर बहर के॥
फूली है जसोदा रानी, सुत जायौ सार्ङ्गपानी।
भूपति उदार फूले भाग फरे घर के॥

व्याख्या: सखी! आज तो ब्रजराज के भवन में बधाई बज रही है गोपियाँ और गोप उत्फुल्ल हुए रुक-रुककर आनन्द क्रीड़ा करते घूम रहे हैं। गायें गोष्ठों में आनन्दमग्न घूम रही हैं, गोपियों के अंग-अंग पुलकित हैं। आनन्दोल्लास से सभी वृक्ष फूल उठे और फलित हो गये हैं। द्वार पर बन्दीजन प्रफुल्लित हैं, प्रफुल्लित फूलों के बन्दनवार बाँधे गये हैं। आज गोकुल नगर में जो जहाँ है, वहीं प्रफुल्लित हो रहा है। मदुकुल के लोग आनन्द से उल्लसित घूम रहे हैं, उनके पिछले जन्मों के पुण्य आज अपने मूल के अंकुरित होकर फूल उठे हैं। उनके जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों का फल उदय हो गया है। यमुना का जल उमड़ रहा है, कुंजों के समूह प्रफुल्लित हो गये हैं, मेघों के बड़े-बड़े काले-काले समूह गर्जना कर रहे हैं, कामदेव उल्लसित होकर नाच रहा है, रति के अंग-अंग उल्लसित हैं कि अब मेरे पति अनंग को शरीर प्राप्त होगा। वे श्रीकृष्ण चन्द्र के पुत्र बन सकेंगे। बड़े भाई श्रीबलराम जी के चित्त की सभी अभिलाषाएं उत्फुल्ल हो गयी (पूर्ण हो गयी) हैं। ब्राह्मण, सत्यपुरुष और वेद उल्लसित हैं, उनका कंस से होने वाला भय दूर हो गया है। सूरदास जी कहते हैं कि सभी घरों से बाहर निकलकर बधाई गा रहे हैं। श्री यशोदा रानी प्रफुल्लित हो रही हैं, साक्षात् शाङ्गपाणि श्री हरि उनके पुत्र होकर प्रकट हुए हैं। उदार ब्रजराज प्रफुल्लित हैं, आज उनके भवन का सौभाग्य फलशाली हो गया (भवन में पुत्र आ गया) है।

राग जैतश्री

कनक-रतन-मनि पालनौ, गढ़यौ काम सुतहार।
 बिबिध खिलौना भाँति के (बहु) गज-मुक्ता चहुँधार॥
 जननि उबटि न्हावाइ कै (सिसु) क्रम सौं लीन्हे गोद।
 पौढ़ाए पट पालनै (हँसि) निरखि जननि मन-मोद॥
 अति कोमल दिन सात के (हो) अधर चरन कर लाल।
 सूर स्याम छबि अरुनता (हो) निरखि हरष ब्रज-बाल॥

व्याख्या: बढ़ई के रत्न तथा मणियों से जड़ा पलना बड़ी कारीगरी करके बनाया है। उसमें अनेक कांति के खिलौने लटक रहे हैं और चारों ओर गज मुक्ता की लड़ियाँ लगी हैं। माता ने उबटन लगाकर स्नान कराके धीरे से, शिशु को गोद में उठाया और पलने में सुलाकर वस्त्र ऊपर डाला, फिर हँसकर पुत्र को देखकर माता के मन में बड़ा आनन्द हुआ। अभी अत्यन्त कोमल हैं, केवल सात दिन के हैं, अधर, रतन तथा कर लाल-लाल हैं, सूरदास जी कहते हैं—श्याम सुन्दर की अरुणिम छटा देखकर ब्रज की नारियाँ हर्षित हो रही हैं।

राग धनाश्री

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।

हलरावै, दुलराइ मल्हरावै, जोड़-सोड़ कछु गावै॥

मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं, न आनि सुवावै।

तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै॥

कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।

सोवत जानि मौन है कै रहि, करि-करि सैन बतावै॥

इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।

जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद-भामिनि पावै॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी श्याम को पलने में झुला रही हैं। कभी झुलाती हैं, कभी प्यार करके पुकारती हैं और चाहे जो कुछ गाती जा रही हैं। वे गाते हुए कहती हैं—‘निद्रा! तू मेरे लाल के पास आ! तू क्यों आकर इसे सुलाती नहीं है। तू झटपट क्यों नहीं आती? तुझे कन्हाई बुला रहा है।’ श्यामसुन्दर कभी पलकें बन्द कर लेते हैं, कभी अधर फड़काने लगते हैं। उन्हें सोते समझकर माता चुप हो रही हैं और दूसरी गोपियों को भी संकेत करके समझाती हैं कि यह सो रहा है, तुम सब भी चुप रहो। इसी बीच में श्याम आकुल होकर जग जाते हैं; श्री यशोदाजी फिर मधुर स्वर से गाने लगती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि सुख देवताओं तथा मुनियों के लिए भी दुर्लभ हैं, वहीं श्याम को

बालरूप में पाकर लालन-पालन तथा प्यार करने का सुख श्री नन्द पत्नी प्राप्त कर रही हैं।

राग कान्हरी

पलना स्याम झुलावति जननी।

अति अनुराग पुरस्सर गावति, प्रफुलित मगन होति नन्द-घरनी॥

उमँगि-उमँगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी।

सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पुरन भई पुरातन करनी॥

व्याख्या: माता श्याम सुन्दर को पालने में झुला रही हैं। अत्यन्त प्रेम वश वे नन्द पत्नी गाती जाती हैं, वे आनन्द से प्रफुल्लित हैं, मन ही मन प्रसन्न हो रही हैं। बार-बार उल्लसित होकर प्रभु भुजाएं फैलाते हैं और श्री यशोदा जी उन्हें हर्षित होकर गोद में उठा लेती हैं। सूरदासजी कहते हैं— श्री यशोदा जी आनन्दित हो रही हैं उनके पूर्वकृत पुण्यफल पूर्णतः सफल हो गये हैं।

राग बिलावल

पालनै गोपाल झुलावै।

सुर-मुनि-देव कोटि तैतीसौ, कौतुक अंबर छावै॥

जाकौ अंत न ब्रह्मा जानै, सिव-सनकादि न पावै।

सो अब देखौ नन्द-जसोदा, हरषि-हरषि हलरावै॥

हुलसत, हँसत, करत किलकारी, मन अभिलाष बढ़ावै।

सूर स्याम भक्तनि हित कारन, नाना भेष बनावै॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी गोपाल को पालने में सुलाती हैं। गन्धर्वादि उपदेवता, मुनिगण तथा तैतीसों करोड़ देवता यह विनोद देखने आकाश में छाये रहते हैं। जिसकी महिमा का पार न ब्रह्मा जी जानते, न शंकरजी या सनकादि ऋषि पाते, उसी को अब देखो तो ये नन्द जी और यशोदाजी बार-बार हर्षित होकर झुला रही हैं। श्याम सुन्दर माता-पिता के हृदय की अभिलाषा वात्सल्य प्रेम को बढ़ाते हैं। सूरदास जी कहते

हैं कि श्याम सुन्दर तो भवतों के हितैषी हैं, वे भक्तों के लिए नये-नये प्रकार के रूप बनाया करते हैं।

राग गौरी

हालरौ हलरावै माता। बलि-बलि जाउँ घोष-मुख-दाना॥
जसुमति अपनौ पुन्य बिचारै। बार-बार सिमु बंद निहारै॥
अँग फरकाइ अलप मुसकाने। या छवि की उपमा को जानै॥
हलरावति गावति कहि प्यारे। बाल-दसा के कौतुक भारे॥
महरि निरखि मुख हिय हुलसानी। सूरदास प्रभु सारंगपानी॥

व्याख्या: माता पालना झुलाती हैं और कहती हैं—'ब्रज को आनन्दित करने वाले लाला! तुझ पर मैं बार-बार बलिहारी जाती हूँ।' माता-चरणों अपने पुण्यों का विचार करती हैं अहो, कितने पुण्य हैं मेरे कि मैंने यह पुत्र पाया। और बार-बार बालक का मुख देखती हैं। श्याम होठ फाड़कर तनिक हँस पड़े, इस शोभा की उपमा कौन जान सकता है। श्याम सुन्दर की शिशु अवस्था की लीलाएं अपार हैं। ब्रज रानी उनकी श्रीमुख देखकर हृदय में उल्लसित हो रही हैं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी जो शिशु बने हैं साक्षात् शाङ्गपाणि नारायण हैं।

राग धनाश्री

कन्हैया हालरु रे।

गढ़ि गुढ़ि ल्यायौ बढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे॥
इक लाख माँगे बढ़ई, दुइ लख नंद जु देहिं, बलि हालरु रे॥
रतन जटित बर पालनौ, रेसम लागी डोर, बलि हालरु रे॥
कबहुँक झूलै पालना, कबहुँ नंद की गोद, बलि हालरु रे॥
झूलै सखी झुलावहीं, सूरदास बलि जाइ, बलि हालरु रे॥

व्याख्या: माता गा रही हैं—'कन्हैया, झूलो! बढ़ई बहुत सज्जाकर पालना गढ़ ले आया और उसे पृथ्वी पर चलाकर दिखा दिया, लाला! मैं तुझपर न्योछावर हूँ, तू उस पालने में झूल। बढ़ई एक लाख भुक्तार्थ

माँगता था, ब्रजराज ने उसे दो लाख दिये। लाल तुझ पर मैं बलि जाऊँ, तू उस पालने में झूल! पालना रत्न जड़ा है और उसमें रेशम की डोरी लगी है, लाल मैं तेरी बलैया हूँ, तू उसमें झूल! मेरा लाल कभी पालने में झूलता है, कभी ब्रजराज की गोद में, मैं तुझपर बलि जाऊँ, तू झूल! सखियाँ झूले को झूला रही हैं, सूरदास इस पर न्योछावर हैं। बलिहारी नन्द लाल, झूलो।'

राग बिहागरौ

नैकु गोपालहिं मोकों दै री।

देखौं बदन कमल नीकैं करि, ता पाछैं तू कनियाँ लै री॥
अति कोमल कर-चरन-सरोरुह, अधर-दसन-नासा सोहै री।
लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत, मनमथ कोटि बारनै गै री॥
वासर-निसा बिचारति हौं सखि, यह सुख कबहुँ न पायौ मैं री।
निगमनि-धन, समकादिक-सरबस, बड़े भाग्य पायौ है तैं री॥
जाकौ रूप जगत के लोचन, कोटि चंद्र-रबि लाजत भै री।
सूरदास बलि जाइ जसोदा गोपिनि-प्रान, पूतना-बैरी॥

व्याख्या: कोई गोपिका कहती है--यशोदा जी! 'तनिक गोपाल को तुम मुझे दे दो। मैं इसके कमल मुख को एक बार भली प्रकार देख लूँ, इसके बाद तुम गोद में लेना।' गोद में लेकर कहती है--'इसके कर तथा चरण कमल के समान अत्यन्त कोमल हैं, अधर, दंतुलियाँ और नासिका बहुत शोभा दे रही हैं, मस्तक पर यह लटकन केशों में गूँथे मोती तथा गले में कौस्तुकमणि ऐसी छटा दे रहे हैं कि इन पर करोड़ों कामदेव भी न्योछावर हो गये। सखी! मैं रात-दिन सोचती रहती हूँ कि यह सुख जो कन्हाई के आने पर मिला है मैंने और कभी नहीं पाया। यह तो वेदों की सम्पत्ति और सूनकादि ऋषियों का सर्वस्व है, जिसे तुमने बड़े सौभाग्य से पा लिया है। इसके रूप ही जगत् नेत्र हैं जगत् के नेत्रों की सफलता इसके रूप का दर्शन करना ही है। करोड़ों सूर्य-चन्द्र इस रूप को देखकर लज्जित हो जाते हैं।' सूरदासजी कहते

हैं—माता यशोदा अपने लाल पर बलि-बलि जाती हैं। उनका लाल गोपियों का प्राणधन और पृथ्वी का शत्रु है।

राग जैतश्री

कन्हैया हालरौ हलरोड़।

हौं वारी व इंदु-बदन पर, अति छबि अलग भरोड़॥

कमल-नयन कौं कपट किए माई, इहिं ब्रज आवै जोड़।

पालागौं बिधि ताहि बकी ज्यों, तू तिहिं तुरत बिगोड़॥

सुनि देवता बड़े, जग-पावन, तू पति या कुल कोड़।

पद पूजिहौं, बेगि यह बालक करि दै मोहिं बड़ोड़॥

दुतियाके ससि लौं बाढ़े सिसु, देखै जननि जसोड़।

यह सुख सूरदास कै नैननि, दिन-दिन दूनौ होड़॥

व्याख्या: माता गा रही हैं—‘कन्हैया! पालने में झूल!’ मैं तेरे इस चन्द्र मुख की बलिहारी जाऊँ जो अपार शोभा से अलग ही अद्भुत रूप से परिपूर्ण है। ‘माई री!’ पूतना का स्मरण करके यह उद्धार करके तब प्रार्थना करती हैं—‘दैव! मैं तेरे पैर पड़ती हूँ, इस कमल लोचन से छल करने इस ब्रज में जो कोई आवे, उसे तू उस पूतना के समान ही तुरन्त नष्ट कर देना। सुना है तू महान् देवता है, संसार को पवित्र करने वाला है, इस कुल का स्वामी है, सो मैं तेरे चरणों की पूजा करूंगी, मेरे इस बालक को झटपट बड़ा कर दे। मेरा शिशु द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति बढ़े और यह माता यशोदा उसे देखे।’ सूरदासजी कहते हैं—मेरे नेत्रों के लिए भी यह सुख दिनों-दिन दुगुना बढ़ता रहे।

राग बिलावन

कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत।

प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रँग खेलत॥

सिव सोचत, बिधि बुद्धि बिचारत, बट बाढ्यौ सागर-जल झेलत।

बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत॥

मुनि मन भीत भए, भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर अकेले पलने में सोये हैं, बार-बार हर्षित होकर अपनी धुन में खेल रहे हैं। हाथों से चरण पकड़कर पैर के अँगूठे को वे मुख में डाल रहे हैं। इससे शंकर जी चिन्ता करने लगे, ब्रह्मा अपनी बुद्धि से विचार करने लगे कि प्रलय का तो समय आया नहीं, क्या करना चाहिए? अक्षय वट बढ़ने लगा, समुद्र का जल उमड़ पड़ा, प्रलयकाल के मेघ प्रलयकाल समाप्त कर चारों ओर बिखरकर दौड़ पड़े क्योंकि प्रलय के समय ही भगवान् बाल मुकुन्द-रूप से पैर का अँगूठा मुख में लेते हैं, दिकपाल लोग भूमि के आधार भूत दिग्गजों को समेटने लगे। सनकादि मुनि भी मन ही मन भयभीत हो गये, पृथ्वी काँपने लगी, संकुचित होकर शेषनाग ने सहस्र फण उठा लिये कि मुझे तो प्रभु की प्रलय-सूचना से पहले ही फणों की फुंकार से अग्नि उगलकर विश्व को जला देना था, जब मेरे काम में देरी हुई। लेकिन यह सब आधिदैविक जगत् में हो जाने पर भी उन ब्रजवासियों ने कोई विशेष बात नहीं समझी। सूरदास जी कहते हैं—वे तो यही समझते रहे कि श्याम खेल में छकड़े को पैर से हटा रहा है।

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत।

नंद-घरनि गावति, हलरावति, पलना पर हरि खेलत॥
जे चरनारबिंद श्री-भूषन, उर तैं नैंकु न टारति।
देखौं धौं का रस चरननि मैं, मुख मेलत करि आरति॥
जा चरनारबिंद के रस कौं सुर-मुनि करत बिषाद।
सो रस है मोहूँ कौं दुरलभ, तातैं लेत सवाद॥
उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे हरि पीवत जब पाइ॥
बढ़्यौ बृक्ष बट, सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात।
महाप्रलय के मेघ उठे करि जहाँ-तहाँ आघात॥
करुना करी, छाँड़ि पग दीन्हौ, जानि सुरनि मन संस।
सूरदास प्रभु असुर-निकंदन, दुष्टनि कै उर गंस॥

व्याख्या: श्री नन्द पत्नी गाती जाती हैं, झुलाती है, श्याम पलने में लेटे खेल रहे हैं। वे हाथ से चरण पकड़कर अँगूठे को मुख में डाल रहे हैं। मेरे जिस चरणकमल को लक्ष्मी जी अपना आभूषण बनाये रहती हैं। हृदय पर से जिसे तनिक भी नहीं हटाती, देखूँ तो उन चरणों के क्या रस हैं? यह सोचकर बड़ी उत्सुकतापूर्वक उसे मुख में डाल रहे हैं। मेरे जिस चरणकमल के रस को पाने के लिए देवता और मुनिगण भी चिन्ता किया करते हैं, वह रस तो मेरे लिए भी दुर्लभ हैं, इसीलिए मानो प्रभु उसका स्वाद ले रहे हैं। लेकिन जब श्रीहरि अपने पैर के अँगूठे को पीने लगे, तब प्रलयकाल समझकर समुद्र उछलने लगा, पर्वत काँपने लगे, शेष को भी धारण करने वाले कच्छप की पीठ व्याकुल हो उठी, शेषनाग के सहस्र फण हिलने लगे, अक्षयवर का वृक्ष बढ़ने लगा, देवता व्याकुल हो उठे, आकाश में उत्पात होने लगा और महाप्रलय के बादल स्थान-स्थान पर वज्रपात करने प्रकट हो गये। इससे देवताओं के मन को सशक्तित समझकर प्रभु ने कृपा करके पैर छोड़ दिया। सूरदास जी कहते हैं—मेरे स्वामी तो असुरों का विनाश करने वाले हैं प्रलय करने वाले नहीं। केवल दुष्टों के हृदय में उनके कारण कांटा चुभता है।

राग बिहागरो

जसुदा मदन गुपाल सोबावै।

देखि सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै॥

असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।

जनु रबि गत संकुचित कमल युग, निसि अलि उड़न न पावै॥

स्वास उदर उससित यौं; मानौ दुग्ध-सिंधु छबि पावै।

नाभि-सरोज प्रगट पदमासन उतरि नाल पछितावै॥

कर सिर-तर करि स्याम मनोहर, अलक अधिक सोभावै।

सूरदास मानौ पन्नगपति, प्रभु ऊपर फन छावै॥

व्याख्या: माता यशोदा मदन गोपाल को सुला रही है, किन्तु उनके शयन की रीति देखकर तीनों लोक भय से काँप रहे हैं, शंकर और

ब्रह्मा जी भ्रम में पड़ गये हैं, कि प्रभु क्या सचमुच सो रहे हैं? काले, कुछ लाल तथा श्वेत नेत्रों में आलस्य आ गया है, उनकी दोनों पलकों बंद हो जाती हैं, मानो सूर्यास्त हो जाने पर दो कमल संकुचित हो रहे हैं जिससे उनमें बैठे भौरे रात्रि में उड़ नहीं पाते। सांस से उदर इस प्रकार ऊपर-नीचे होता है, मानो क्षीर सागर शोभा दे रहा है। नाभिकमल तो प्रत्यक्ष ही है, किन्तु ब्रह्मा जी कमलनाल से उतर जाने के कारण अब पश्चात्ताप करते हैं कि मैं प्रभु की नाभि से निकले कमल पर बैठा ही रहता तो आज भी उनके समीप रह पाता। श्यामसुन्दर ने हाथ को मस्तक के नीचे रख लिया है, अतः अब मुख पर धिरी पलकों और अधिक शोभा दे रही हैं। सूरदास जी कहते हैं कि यह ऐसी छटा है मानो शेषनाग प्रभु के ऊपर अपने फणों से छाया किये हों।

राग बिलावल

अजिर प्रभातहिं स्याम कौं, पलिका पौढ़ाए।
 आप चली गृह-काज कौं, तहँ नंद बुलाए॥
 निरखि हरषि मुख चूमि कै, मंदिर पग धारी।
 आतुर नंद आए तहाँ जहँ ब्रह्म मुरारी॥
 हँसे तात मुख हेरि कै, करि पग-चतुराई।
 किलकि झटकि उलटे परे, देवनि-मुनिराई॥
 सो छबि नंद निहारि कै, तहँ महरि बुलाई।
 निरखि चरित गोपाल के, सूरज बलि जाई॥

व्याख्या: माता यशोदा ने प्रातःकाल श्याम सुन्दर को आँगन में छोटी पलंगिया पर लिटा दिया। श्री ब्रजराज को वहाँ बुलाकर स्वयं घर का कार्य करने जाने लगी। पुत्र का मुख देखकर हर्षित होकर उसका चुम्बन लेकर वे भवन में चली गयीं। साक्षात् परमब्रह्म मुखे शत्रु श्रीकृष्ण चन्द्र जहाँ सोये थे, वहाँ श्री नन्द जी शीघ्रतापूर्वक आ गये। श्याम सुन्दर पिता का मुख देखकर हंसे और पैरों से चतुराई करके किलकारी मारकर वे देवताओं तथा मुनियों के स्वामी झटके से उलट गये। यह शोभा

देखकर श्री नन्द जी ने ब्रजरानी को वहाँ बुलाया। गोपाल की लीला देख-देखकर सूरदास उन पर न्योछावर होता है।

राग रामकली

हरषे नंद टेरत महरि।

आइ सुत-मुख देखि आतुर, डारि दै दधि-डहरि॥

मथति दधि जसुमति मथानी, धुनि रही घर-घहरि।

स्रवन सुनति न महर-बातैं, जहाँ-तहाँ गइ चहरि॥

यह सुनत तब मातु धाई, गिरे जाने झहरि।

हँसत नंद-मुख देखि धीरज तक कस्यौ ज्यौ ठहरि॥

श्याम उलटे परे देखे, बढी सोभा लहरि।

सूर प्रभु कर सेज टेकत, कबहुँ टेकत ढहरि॥

व्याख्या: श्री नन्द जी आनन्दित होकर ब्रजरानी को पुकार रहे हैं—
'दही का मटका एक ओर रख दो। झटपट आकर पुत्र का मुख देखो।
लेकिन श्री यशोदा जी मथानी लिये दधि-मन्थन कर रही हैं, घर में
दही मथने के घरघराहट का शब्द हो रहा है, स्थान-स्थान पर चहल-पहल
हो रही है, इसलिए ब्रजरानी श्री नन्द जी की पुकार कानों से सुन नहीं
पातीं। लेकिन जब उन्होंने पुकार सुनी तो यह समझकर कि कन्हाई पलने
से गिर पड़ा है, झटपट दौड़ पड़ीं; किन्तु श्री नन्द जी का हँसी से
खिला मुख देखकर उन्हें धैर्य हुआ और हृदय की धड़कन रुकी। श्याम
सुन्दर को उल्टे पड़े देखकर वहाँ छवि की लहर बढ़ गयी। सूरदासजी
कहते हैं—प्रभु सीधे होने के लिए कभी हाथों को पलंग पर टेक रहे
थे और कभी पाटी पर टेक रहे थे।

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।

चिरजीवौ मेरौ लाड़िलौ, मैं भई सभागी॥

एक पाख त्रय-मास कौ मेरौ भयौ कन्हाई।

पटकि रान उलटो पर्यौ, मैं करौ बधाई॥

नंद-घरनि आनंद भरी, बोलीं ब्रजनारी।
यह सुख मुनि आई सबै, सूरज बलिहारी॥

व्याख्या: श्री ब्रजरानी प्रभु को पीठ के बल सीधे लिटाकर आनन्दित होकर उनके मुख का चुम्बन करने लगी। बोली- 'मेरा प्यारा लाल चिरजीवी हो। मैं आज भाग्यवती हो गयी। मेरा कन्हाई साढ़े तीन महीने का ही हुआ है, पर आज जानुओं को टेककर स्वयं उलटा हो गया। मैं आज इसका मङ्गल-बधाई बँटवाऊँगी।' आनन्दकारी श्री ब्रजरानी ने ब्रज की गोपियों को बुलाया। यह संवाद पाकर सब वहाँ आ गयीं। सूरदास इस छवि पर बलिहारी हैं।

जो सुख ब्रज में एक घरी।
सो सुख तीनिक लोक मैं नाहीं धनि यह घोष-पुरी॥
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारैं रहति खरी।
सिव-सनकादि-सुकादि-अगोचर, ते अवतरे हरी॥
धन्य-धन्य बड़भागिनि जसुमति, निगमनि सही परी।
ऐसैं सूरदास के प्रभु कौं, लीन्हौ अंक भरी॥

व्याख्या: ब्रज में जो आनन्द प्रत्येक घड़ी हो रहा है, वह आनन्द तीनों लोकों में नहीं है। यह गोप-नगरी धन्य है। आठों सिद्धियाँ और नवों निधियाँ द्वार पर यहाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, क्योंकि शिव, सनकादि ऋषि तथा शुकदेवादि परमहंसों के लिए भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, उन श्रीहरि के यहाँ अवतार लिया है। परम सौभाग्यवती श्रीयशोदा जी धन्य हैं, धन्य है यह आज वेद भी सत्य मानते हैं, क्योंकि सूरदास के ऐसे महिमामय प्रभु को उन्होंने गोद में ले लिया है।

यह सुख सुनि हरषीं ब्रजनारी। देखन कौं धाई बनवारी॥
कोउ जुवती आई, कोउ आवति। कोउ उठि चलति, सुनत सुख पावति॥
घर-घर होति अनंद-बधाई। सूरदास प्रभु की बलि जाई॥

व्याख्या: यह आनन्द-संवाद सुनकर ब्रज की स्त्रियाँ हर्षित हो गयी। वे वनमाली श्याम सुन्दर को देखने दौड़ पड़ीं। कोई युवती आ गयी

है, कोई आ रही है, कोई उठकर चली है, कोई समाचार सुनते ही आनन्द मग्न हो रही है। घर-घर आनन्द-बधाई बँट रही है। सूरदास जी अपने प्रभु पर बलिहारी जाते हैं।

जननी देखि, छबि बलि जाति।

जैसें निधनी धनहिं पाएँ, हरष दिन अरु राति॥

बाल-लीला निरखि हरषति, धन्य धनि ब्रजनारि।

निरखि जननी-बदन किलकत, त्रिदस-पाति दै तारि॥

धन्य नँद, धनि धन्य गोपी, धन्य ब्रज कौ बास।

धन्य धरनी करन पावन जन्म सूरजदास॥

व्याख्या: माता श्याम सुन्दर की शोभा देखकर बलिहारि जाती हैं। जैसे निर्धन को धन प्राप्त हो जाने से रात-दिन आनन्द हो रहा हो। बाल लीला देखकर हर्षित होने वाली ब्रज की नारियाँ धन्य हैं। त्रिलोकी नाथ प्रभु माता का मुख देखकर ताली बजाकर किलकारी मारते हैं। ब्रजराज श्री नन्द जी धन्य हैं। ये गोपिकाएं धन्य-धन्य हैं और जिन्हें ब्रज में निवास मिला है वे भी धन्य हैं। सूरदास जी कहते हैं कि पृथ्वी को पवित्र करने वाला प्रभु का अवतार धन्य है।

राग बिलावल

जसुमति भाग-सुहागिनी, हरि कौं सुत जानै।

मुख-मुख जोरि बत्यावई सिसुताई ठानै॥

मो निधनी कौ धन रहै, किलकत मन मोहन।

बलिहारी छबि पर भई ऐसी बिधि जोहन॥

लटकति बेसरि जननि की, इकटक चख लावै।

फरकत बदन उठाइ कै, मन ही मन भावै॥

महरि मुदित हित उर भरै, यह कहि, मैं वारी।

नंद-सुवन के चरित पर, सूरज बलिहारी॥

व्याख्या: सौभाग्यशालिनी श्रीयशोदा जी श्रीहरि को अपना पुत्र समझती है। उनके मुख से अपना मुख सटाकर बातें करती हैं। श्याम सुन्दर

लड़कपन ठान लेते हैं हाथ से मैया की नाक पकड़ लेते हैं, वह कहती हैं—‘मुझ कंगालनी का धन यह मनमोहन किलकता रहे। लाल! तेरे इस प्रकार देखने तथा तेरी छटा पट मैं बलिहारी हूँ।’ माता की लटकती हुई बेसर पर मोहन एकटक दृष्टि लगाये हैं, कभी होठ फड़काते हुए मुख उठाकर मन-ही-मन मुदित होते हैं। ब्रजरानी यह कहकर कि लाल! मैं तुझ पर न्योछावर हूँ, हर्षित होकर प्रेम से उठाकर हृदय से लगा लेती हैं। सूरदास श्री नन्दन की इस शिशु लीला पर बलिहारी जाते हैं।

राग आसावरी

गोद लिये हरि कौं नंदरानी, अस्तन पान करावति है।
 बार-बार रोहिनि कौ कहि-कहि, पलिका अजिर मँगावति है॥
 प्रात समय रबि-किरनि कौंवरी, सो कहि, सुतहिं बतावति है।
 आउ घाम मेरे लाल कैं आँगन, बाल-केलि कौं गावति है॥
 रुचिर सेज लै गइ मोहन कौं, भुजा उछंग सोवावति है।
 सूरदास प्रभु सोए कन्हैया, हलरावति-मल्हरावति है॥

व्याख्या: श्रीहरि को गोद में लेकर नन्दरानी यशोदा जी स्तनपान करा रही हैं तथा बार-बार श्री रोहिणी जी से कह-कहकर खटुलिया को आँगन में मँगाती हैं। ये प्रातःकालीन सूर्य की कोमल किरणें हैं, इस प्रकार कहकर पुत्र को बतलाती हैं। ‘किरणो! मेरे घर में मेरे लाल के आँगन में आओ।’ बार-बार बाललीला का गान करती हैं। सुन्दर शय्या पर मोहन को ले जाकर अपनी भुजा पर उनका सिर रखकर गोद में शयन कराती हैं। सूरदास जी कहते हैं—मेरे प्रभु कन्हाई जब सो गये, तब उन्हें सुलाती तथा थपकी देखकर प्यार करती हैं।

राग बिलावल

नंद-घरनि आनंद भरी, सुत स्याम खिलावै।
 कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहिं मनावै॥

कबहिं दँतुलि द्वै दूध की, देखौं इन नैननि।

कबहिं कमल-मुख बोलिहैं, सुनिहाँ उन बैननि॥

चूमति कर-पग-अधर-भ्रू, लटकति लट चूमति।

कहा बरनि सूरज कहै, कहँ पावै सो मति॥

व्याख्या: आनन्दमग्न श्री नन्दरानी जी अपने पुत्र श्याम सुन्दर को खेला रही हैं। वे ब्रह्मा से मनाती हैं—‘मेरा लाल कब घुटनों चलने लगेगा। कब अपनी इन आँखों से मैं इसके दूध की दो दँतुलियाँ देखूँगी। कब यह कमलमुख बोलने लगेगा और मैं उन शब्दों को सुनूँगी।’ प्रेम-विभोर होकर वे पुत्र के हाथ, चरण, अधर तथा भौंहों का चुम्बन करती हैं एवं लटकती हुई अलकों को चूम लेती हैं। सूरदास जी ऐसी बुद्धि कहाँ से पावें, कैसे इस शोभा का वर्णन करके बतावें।

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ौ किन होहिं।

इहिं मुख मधुर बचन हँसिकै धौं, जननि कहै कब मोहिं॥

यह लालसा अधिक मेरैं जिय को जगदीस कराहिं।

मो देखत कान्हर इन्हि आँगन, पग द्वै धरनि धराहिं॥

खेलहिं हलधर-संग रंग रुचि, नैन निरखि सुख पाऊँ।

छिन-छिन छुधित जानि पय कारन, हँसि-हँसि निकट बुलाऊँ॥

जाकौ सिव बिरंचि-सनकादिक मुनिजन ध्यान न पावै।

सूरदास जसुमति ता सुत-हित, मन अभिलाष बढ़ावै॥

व्याख्या: माता कहती हैं—‘मेरे नन्हें गोपाल लाल! तू झटपट बड़ा क्यों नहीं हो जाता। पता नहीं कब तू इस मुख से हँसकर मधुर वाणी से मुझे ‘मैया’ कहेगा—मेरे हृदय में यही अत्यन्त कुण्ठा है। यदि इसे जगदीश्वर पूरा कर दें कि मेरे देखते हुए कन्हाई इस आँगन में पृथ्वी पर अपने दोनों चरण रखें। बड़े भाई बलराम के साथ वह आनन्दपूर्वक उमंग में खेले और मैं आँखों से यह देखकर सुखी होऊँ। क्षण-क्षण में भूखा समझकर दूध पिलाने के लिए मैं हँस-हँसकर पास बुलाऊँ। सूरदास जी कहते हैं कि शंकर जी, ब्रह्म जी, सनकादि ऋषि तथा मुनिगण ध्यान में भी जिसे नहीं पाते, उसी के पुत्र के प्रेम से माता यशोदा मन में नाना प्रकार की अभिलाषा बढ़ाया करती हैं।

राग धनश्री

हरि किलकत जसुदा की कनियाँ।
 निरखि-निरखि मुख कहति लाल सौं मो निधनी के धनियाँ॥
 अति कोमल तन चितै स्याम कौ, बार-बार पछितात।
 कैसें बच्यौ, जाऊँ बलि तेरी, तृणावर्त कैं घात॥
 ना जानौं धौं कौन पुन्य तैं, को करि लेत सहाइ।
 वैसी काम पूतना कीन्हौ, इहिं ऐसौ कियौ आइ॥
 मात दुखित जानि हरि बिहँसे, नान्हीं दँतुलि दिखाइ।
 सूरदास प्रभु माता चित तैं दुख डार्यौ बिसराइ॥

श्रीहरि माता यशोदा की गोद में किलकारी ले रहे हैं। माता बार-बार मुख देखकर अपने लाल से कहती हैं—‘लाल! तू मुझ कंगालिनी का धन है।’ वे श्याम सुन्दर का अत्यन्त कोमल शरीर देखकर बार-बार पश्चात्ताप करती हैं—‘लाल! मैं तुझ पर बलिहारी हूँ, पता नहीं तू तृणावर्त के आघात से कैसे बच गया। किस पुण्य से कौन देवता सहायता कर देता है, यह मैं जानती नहीं; जैसा कर्म पूतना ने किया था, वैसा ही इस तृणावर्त ने आकर किया।’ माता को दुःखित समझकर श्याम छोटी दँतुलियाँ दिखाकर हँस पड़े। सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु ने माता का चित्त अपने में लगाकर उनका दुःख विस्मृत करा दिया।

राग देव गंधार

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
 मुख मैं तीनि लोक दिखाए, चकित भई नंद-रनियाँ॥
 घर-घर हाथ दिवावति डोलति, बाँधति गरैं बधनियाँ।
 सूर स्याम की अद्भुत लीला नहिं जानत मुनिजनियाँ॥

व्याख्या: हरि श्री यशोदा जी की गोद में किलकारी ले रहे हैं। अपने खुले मुख में इन्होंने तीनों लोक दिखला दिये, जिससे श्री नन्दरानी विस्मित हो गयीं। कोई जादू-टोना न हो, इस शंका से घर-घर जाकर

श्याम के मस्तक पर आशीर्वाद के हाथ रखवाती घूमती हैं और गले में छोटी बधनखिया आदि बाँधती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर की लीला ही अद्भुत है, उसे तो मुनिजन भी नहीं समझ पाते।

राग सारंग

हरि कौ मुख माइ, मोहि अनुदिन अति भावै।
चितवत चित नैननि की मति-गति बिसरावै॥
ललना लै-लै उछंग अधिक लोभ लागै।
निरखति निंदति निमेष करत ओट आगै॥
सोभित सुकपोल-अधर, अलप-अलप दसना।
किलकि-किलकि बैन कहत, मोहन, मृदु रसना॥
नासा, लोचन बिसाल, संतत सुखकारी।
सूरदास धन्य भाग, देखति ब्रजनारी॥

व्याख्या: गोपिका कहती है— 'सखी! मुझे तो श्याम का मुख दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक आकर्षक लगता है। इसे देखते ही चित्त अपनी और नेत्रों की विचार शक्ति और गति को विस्मृत कर देता है। इस लाल को बार-बार गोद में लेने पर भी लोभ और बढ़ता जाता है।' इस प्रकार श्याम के श्रीमुख को देखते हुए वे अपनी पलकों की निन्दा करती हैं कि ये आगे आकर आड़ कर देती हैं। मोहन के सुन्दर कपोल, लाल अधर तथा छोटे-छोटे दाँत अत्यन्त शोभा दे रहे हैं। बार-बार किलक- किलककर अपनी कोमल जिह्वा से वह कुछ बोल रहा है। सुन्दर नासिका, उसके बड़े-बड़े नेत्र सदा ही आनन्ददायक हैं। सूरदास जी कहते हैं कि ये ब्रज की गोपियों का सौभाग्य है। धन्य है जो मोहन को देखती है।

राग जैतश्री

लालन, वारी या मुख ऊपर।

माई मोरहि दीठि न लागै, तातैं मसि-बिंदा दियौ भू पर॥

सरबस मैं पहिलैं ही वास्यौ, नान्हीं-नान्हीं दँतुली दू पर।
अब कहा करौं निछावरि, सूरज सोचित अपनैं लालन जू पर॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा आनन्दमग्न हो रही हैं 'मैं अपने लाल जी पर न्योछावर हूँ। सखी! कहीं मेरी ही नजर इसे न लग जाए, इससे काजल की बिन्दी इसकी भौंह पर मैंने लगा दी है। इसकी दोनों दँतुलियों पर तो मैंने अपना सर्वस्व पहले ही न्योछावर कर दिया। अब सोचती हूँ कि अपने लाल जी पर और क्या न्योछावर करूँ।'

राग रामकली

खीझत जात माखन खात।
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात॥
कबहुँ रुनझुन चलत धुदुरुनि, धूरि धूसर गात।
कबहुँ झुकि कै अलक खँचत, नैन जल भरि जात॥
कबहुँ तोतरे बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात।
सूर हरि की निरखि सोभा, निमिष तजत न मात॥

व्याख्या: मोहन माखन खाते हुए खीझते-से रहे हैं। नेत्र लाल हो रहे हैं, भौंहें तिरछी हैं, बार-बार जम्हाई लेते हैं। कभी नूपुरों को रुनझुन करते घुटनों से चलते हैं, शरीर धूलि से धूसर हो रहा है, कभी झुककर अपनी पलकें खींचते हैं, जिससे नेत्रों में आँसू भर आते हैं, कभी तोतली वाणी से कुछ कहने लगते हैं, कभी बाबा को बुलाते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि श्रीहरि की यह शोभा देखकर माता पलकें भी नहीं डालती।

राग ललित

(माई) बिहरत गोपाल राइ, मनिमय रचे अंगनाइ,
लरक पररिंगनाइ, घुदुरुनि डोलै।
निरखि-निरखि अपनो प्रति-बिंब, हँसत किलकत औ,
पाछैं चितै फेरि-फेरि मैया-मैया बोलै॥

जौं अलिगन सहित बिमल जलज जलहिं धाड़ रहै,
 कुटिल अलक बदन की छबि, अवनी परि लोलै।
 सूरदास छबि निहारि, थकित रहीं घोष नारि,
 तन-मन-धन देतिं वारि, बार-बार ओलै॥

व्याख्या: सखी! मणिमय सुसज्जित आँगन में गोपाल क्रीड़ा कर रहे हैं। घुटनों चलते हैं, चारों ओर सरकते-घूमते लड़खड़ाते हैं, बार-बार अपना प्रतिबिम्ब देख-देखकर हँसते और किलकारी मारते हैं, घूम-घूमकर पीछे देख-देखकर 'मैया-मैया' बोलते हैं। जैसे मँडराते भौरो के साथ निर्मल कमल पानी पर बहता जाता हो, इस प्रकार घुँघराली पलकों से घिरे चंचल मुख की शोभा मणि भूमि में हो रही है। सूरदास जी कहते हैं कि इस शोभा को देखकर ब्रज की स्त्रियाँ थकित हो रहीं। तन, मन, धन वे निछावर किये देती हैं और बार-बार उसी की शरण लेती हैं।

राग बिलावल

आजु भोर तमचुर के रोल।
 गोकुल मैं आनंद होत है, मंगल-धुनि महराने टोल॥
 फूले फिरत नंद अति सुख भयौ, हरषि मँगावत फूल-तमोल।
 फूली फिरति जसोदा तन-मन, उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल॥
 तनक बदन, दोउ तनक-तनक कर, तनक चरन, पोंछति पट झोल।
 कान्ह गरैं सोहति मनि-माला, अंग अभूषन अँगुरिनि गोल॥
 सिर चौतनी, डिठौना दीन्हौ, आँखि आँजि पहिराइ निचोल।
 स्याम करत माता सौं झगरौ, अटपटात कलबल करि बोल॥
 दोउ कपोल गहि कै मुख चूमति, बरष-दिवस कहि करति कलोल।
 सूर स्याम ब्रज-जन मोहन बरष-गाँठि कौ डोरा खोल॥

व्याख्या: आज प्रातःकाल अँधेरा रहते ही चहल-पहल मच गयी है। गोकुल में आनन्द मनाया जा रहा है। ब्रजराज के मुहल्ले में मङ्गल-ध्वनि हो रही है। श्री नन्द जी फूले-फूले फिर रहे हैं, उन्हें बड़ा आनन्द आ रहा है, वे पुष्प और ताम्बूल मँगवा रहे हैं; श्री यशोदा जी शरीर

और मन दोनों से प्रफुल्लित हुई घूम रही हैं, अपने अमूल्य धन कन्हाई को उन्होंने उबटन लगाकर स्नान कराया और अब कोमल वस्त्र से उसके छोटे-से शरीर, दोनों छोटे-छोटे हाथ तथा छोटे-छोटे चरणों को पोंछ रही हैं। कन्हाई के गले में मणियों की माला शोभा दे रही है, अंगों में आभूषण तथा अंगुलियों में अंगूठियाँ हैं। सिर पर माता ने चौकोर टोपी पहनायी है। नज़र न लगने के लिए काजल का बिन्दु भाल पर लगाया है, नेत्रों में काजल लगाया है झगुलिया पहिनायी है। श्याम माता से झगड़ा कर रहा है, लड़खड़ाता है और कलबल स्वर में बोलता है। माता उसके दोनों कपोल पकड़कर मुख का चुम्बन करती हैं। 'आज तेरी वर्षगांठ है।' यह कहकर उल्लास प्रकट करती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर ब्रजजनों के चित्त को मोहित करने वाले हैं। आज उनकी वर्षगांठ के सूत्र की ग्रन्थि खोली गयी है।

राग बिलावल

बाल विनोद खरो जिय भावत।

मुख प्रतिबिम्ब पकरिबे कारन हुलसि घुटुरुवनि धावत॥

अखिल ब्रह्मांड-खंड की महिमा, सिसुता माहिं दुरावत।

सब्द जोरि बोल्यौ चाहत हैं, प्रगट बचन नहिं आवत॥

कमन-नैन माखन माँगत हैं करि-करि सैन बतावत।

सूरदास स्वामी सुख-सागर, जसुमति-प्रीति बढ़ावत॥^७

व्याख्या: श्याम सुन्दर का बाल विनोद हृदय को अत्यन्त प्रिय लगता है। अपने मुख का प्रतिबिम्ब पकड़ने के लिए वे बड़े उल्लास से घुटनों के बल दौड़ते हैं। इस प्रकार निखिल ब्रह्माण्ड नायक होने का माहात्म्य अपनी शिशुता में वे छिपाये हुए हैं। शब्दों को एकत्र करके कुछ कहना चाहते हैं, किन्तु स्पष्ट बोलना आता नहीं है। वे कमललोचन मक्खन मांगना चाहते हैं। इसलिए बार-बार संकेत करके समझा रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी सुख के समुद्र हैं, वे माता यशोदा के वात्सल्य प्रेम को बढ़ा रहे हैं।

राग सारंग

मैं बलि स्याम, मनोहर नैन।

जब चितवत मो तन करि अँखियनि, मधुप देत मनु सैन॥

कुंचित, अलक, तिलक गोरोचन, ससि पर हरि के ऐन।

कबहुँक खेलत जात घुटुरुवनि, उपजावत सुख चैन॥

कबहुँक रोवत-हँसत बलि गई, बोलत मधुरे बैन।

कबहुँक ठाढ़े होत टेकि कर, चलि न सकत इक गैन॥

देखत बदन करौं न्योछावरि, तात-मात सुख-दैन।

सूर बाल-लीला के ऊपर, बारौं कोटिक मैन॥

व्याख्या: माता कहती हैं कि श्याम के बलिहारी नेत्रों की मैं बलिहारी जाती हूँ। जब मेरी ओर आंखें करके वह मेरे मुख की ओर देखता है तो लगता है मानो भौरे ही कोई संकेत कर रहे हैं, हरि के चन्द्रमुख पर घुँघराली अलकें छायी हैं और माथे पर गोरोचन का तिलक लगा है। कभी घुटनों चलते हुए खेलता है और सुख-चैन उत्पन्न करता है, कभी रोता है, कभी हँसता है। मैं तो उसकी मधुर वाणी पर बली जाती हूँ। कभी हाथ टेककर खड़ा हो जाता है। किन्तु अभी तक पग भी नहीं चल सकता। उसका मुख देखकर मैं अपने आपको न्योछावर करती हूँ, वह माता-पिता को सुख देने वाला है। सूरदास जी कहते हैं—इस बाल लीला के ऊपर करोड़ों कामदेवों को न्योछावर करता हूँ।

राग बिलावल

नंद-धाम खेलत हरि डोलत।

जसुमति करति रसोई भीतर, आपुन किलकत बोलत॥

टेरि उठी जसुमति मोहन कौं, आवहु काहें न धाइ।

बैन सुनत माता पहिचानी, चले घुटुरुवनि पाइ॥

लै उठाइ अंचल गाहि पोंछे, धूरि भरी सब देह।

सूरज प्रभु जसुमति रज झारति, कहाँ भरी यह खेह॥

व्याख्या: हरि नन्दभवन में खेलते फिर रहे हैं। यशोदा जी घर के भीतर रसोई बना रही हैं, ये किलकारी मारते कुछ बोल रहे हैं। इसी समय माता यशोदा ने मोहन को पुकारा—‘लाल’ तू दौड़कर यहाँ क्यों नहीं आता? शब्द सुनकर पहचान लिया कि मैया ने गोद में उठा लिया, धूलि भरा हुआ पूरा शरीर आंचल से पोंछने लगी। सूरदास जी कहते हैं—मेरे स्वामी के शरीर में लगी धूल झाड़ती हुई यशोदा जी कहती हैं इतनी धूल तुमने कहाँ से लिपटा ली?

राग सूहों बिलावल

धनि जसुमति बड़भागिनी, लिए कान्ह खिलावै।
तनक-तनक भुज पकरि कै, ठाढ़ौ होन सिखावै॥
लरखरात गिरि परत हैं, चलि घुटुरुनि धावैं।
पुनि क्रम-क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावैं॥
अपने पाइनि कबहिं लाँ, मोहिं देखन धावै।
सूरदास जसुमति इहै बिधि सौं जु मनावै॥

व्याख्या: महाभाग्यवती व यशोदा जी धन्य हैं, वे कन्हाई को गोद में लिये खेल रही हैं। उनकी छोटी-छोटी भुजाएं पकड़कर खड़ा होना सिखलाती हैं। वे लड़खड़ाते हैं और गिर पड़ते हैं। फिर घुटनों के बल सरकते चल पड़ते हैं, फिर माता धीरे-धीरे हाथों को पकड़े हुए सहारा देकर एक-दो पग चलाती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि यशोदाजी इसी प्रकार से दैव से मानती हैं कि कब तक अपने पैरों चलकर मेरा लाल मुझे देखने दौड़कर आने लगेगा।

राग कान्हरी

हरिकौ बिमल जस गावति गोपंगना।
मनिमय आँगन नदराइ कौ, बाल गोपाल करें तहँ रँगना॥
गिरि-गिरि परत घुटरुनि रँगत, खेलत हैं दोउ छगना-मगना।
धूसरि धूरि दुहँ तन मंडित, मातु जसोदा लेति उछँगना॥
बसुधा त्रिपद करत नहिं आलस तिनहिं कठिन भयो देहरी उलँघना।
सूरदास प्रभु ब्रज-बधु निरखति, रुचिर हार हिय सोहत बधना॥

व्याख्या: गोपरानियां हरि के निर्मल यश का गान कर रही हैं। श्रीनन्दराय का आंगन मणिजड़ित है, वहाँ गोपाल बाल रूप में घुटनों से सरकते हैं। उठने के प्रयत्न में वे गिर-गिर पड़ते हैं, फिर घुटनों से चलने लगते हैं। दोनों भाई बलराम-घनश्याम खेल रहे हैं। धूलि से धूसर दोनों के शरीर सुन्दर लग रहे हैं। माता यशोदा उन्हें गोद में ले लेती हैं। वामनावतार में पूरी पृथ्वी को तीन पग में नाप लेने में जो नहीं थके, गोकुल में शिशु क्रीड़ा करके उनके लिए चौखट पार करना कठिन हो गया है। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी के वक्षस्थल पर सुन्दर हार तथा बघनखा शोभित हो रहा है, ब्रज की गोपियां उनकी इस शोभा को देख रही हैं।

राग सूहों बिलावल

चलन चहत पाइनि गोपाल।

लए लाइ अँगुरी नंदरानी, सुंदर स्याम तमाल॥

डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नंदलाल।

जनु सिर पर सरि जानि अधोमुख, धुकत नलिनि नमि नाल॥

धूरि-धौत तन, अंजन नैननि, चलत लटपटी चाल।

चरन रनित नूपुर-ध्वनि, मानौ बिहरत बाल मराल॥

लट लटकनि सिर चारु चखौड़ा, सुठि सोभा सिसु भाल।

सूरदास ऐसौ सुख निरखत, जग जीजै बहु काल॥

व्याख्या: गोपाल पैरों से चलना चाहते हैं। श्री नन्दरानी ने उन्हें तमाल के समान श्यामसुन्दर को अपनी अंगुलियों का सहारा पकड़ा दिया है। नन्दनंदन लड़खड़ाकर हाथों के बल गिर पड़ते हैं, उस समय उनकी भुजाएं ऐसी शोभा देती हैं, मानो अपने मस्तक पर चन्द्रमा की समझकर दो कमल अपनी नाल लटकाकर नीचे मुख किये झुक गये हैं। शरीर धूल-धूसरित है, नेत्रों में अंजन लगा है, लड़खड़ाती चाल से चलते हैं, चरणों में ध्वनि करणें नूपुर इस प्रकार बज रहे हैं मानो हंस शावक क्रीड़ा कर रहे हों। मस्तक पर अलकें लटक रही हैं, बड़ा सुन्दर डिठौना

(काजल का टीका) मनोहर गाल पर लगा है, यह शिशु शोभा अत्यन्त मनोहर है। सूरदास जी कहते हैं कि ऐसे सुखरूप का दर्शन करते हुए तो संसार में बहुत समय तक जीवित रहना चाहिए। इसके आगे अन्य सभी लोकों के सुख तुच्छ हैं।

राग बिलावल

भावत हरि कौ बाल-बिनोद।

स्याम-राम-मुख निरखि-निरखि, सुख-मुदित रोहिनी, जननि जसोद॥

आँगन-पक-राग तन सोधित, चल नूपुर-धुनि सुनि मन मोद।

परम सनेह बढ़ावत मातनि, रबकि-रबकि हरि बैठत गोद॥

आनंद-कंद, सकल सुखदायक, निसि-दिन रहत केलि-रस ओद।

सूरदास प्रभु अंबुज-लोचन, फिरि-फिरि चितवत ब्रज-जन-कोद॥

व्याख्या: हरि का बाल विनोद बहुत प्रिय लगता है। घनश्याम और बलराम के मुखों को देखकर-देखकर माता रोहिणी और मैया यशोदा भाइयों के शरीर सने सोधित हो रहे हैं। चलते समय नूपुर की ध्वनि होती, जिसे सुनकर मन में अत्यन्त आह्लाद होता है। श्रीहरि उछल-उछलकर माताओं की गोद में बैठते हैं और उनके उत्कृष्ट स्नेह को बढ़ाते हैं। आनन्दकन्द समस्त सुखों के दाता हरि रात-दिन क्रीड़ा के आनन्दरस में भीगे रहते हैं। सूरदास के कमललोचन स्वामी बार-बार मुड़-मुड़कर ब्रजजनों की ओर देखते हैं।

राग सूहो

सूच्छम चरन चलावत बल करि।

अटपटात, कर देति सुंदरी, उठत तबै सुजतन तन-मन धरि॥

मृदु पद धरत धरनि ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै-लै भरि-भरि।

पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यों जल में दाँची गागरि गरि॥

सूरदास सिसुता-सुख जलनिधि, कहँ लौं कहौं नहिं कोउ समसरि।

बिबुधनि मनतर मान रमत ब्रज, निरखत जसुमति सुख छिन-पल-धरि॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर छोटे-छोटे चरणों को प्रयत्न करके चलते हैं। जब लड़खड़ाते हैं तब माता हाथों का सहारा देती है, फिर भली प्रकार प्रयत्न में मन और पूरा शरीर लगाकर उठ खड़े होते हैं। कोमल चरण पृथ्वी पर रखते तो हैं, पर वह ठहरता नहीं है। पर माता दोनों ओर हाथ फैलाकर भुजाओं के बीच में पकड़कर बार-बार संभाल लेती हैं। सुमुखी माता श्याम सुन्दर की क्रीड़ा के रस में पुलकित हो रही हैं। और ऐसी निमग्न हो गयी हैं, जैसे पानी में कच्चा घड़ा गल गया हो। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम तो बाल सुख के समुद्र हैं, कहाँ तक वर्णन करूँ, कोई उनकी तुलना करने योग्य नहीं है। देवताओं को भी अपने मन से तुच्छ समझकर ये द्रव में क्रीड़ा कर रहे हैं जिससे माता यशोदा आनन्दित हुई प्रत्येक पल, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घड़ी देख रही हैं।

राग बिलावल

बाल-बिनोद आँगन की डोलनि।

मणिमय भूमि नंद कैं आलय, बलि-बलि जाऊं तोतरे बोलनि॥

कठुला कंठ कुटिल केहिर-नख, बज्र-माल बहु लाल अमोलनि।

बदन सरोज तिलक गोरोचन, लट लटकनि मधुकर-गति डोलनि॥

कर नवनीत परस आनन सौं, कछुक खात, कछु लग्यो कपोलनि।

कहि जन सूर कहाँ लौं बरनौं, धन्य नंद जीवन जग तोलनि॥

व्याख्या: नंदभवन की आनन्दमय मणिमय भूमि पर बाल-क्रीड़ा से श्याम के घूमने तथा तोतली बाणी पर मैं बार-बार बलिहारी जाता हूँ। गले में कठुला है, टेढ़े नखों वाला बघनखा है और हीरों की माला है जिसमें बहुत-से अमूल्य लाल लगे हैं, कमल के समान मुख हैं, गोरोचन का तिलक लगा है अलकें लटकी हुई हैं ओर भौरों के समान हिलती हैं। हाथों में लिये मक्खन को मुख से लगाते हैं कुछ खाते हैं और कुछ कपोलों में लग गया है। यह सेवक सूरदास कहाँ तक वर्णन करे, श्री नन्दराय जी का जीवन धन्य है—संसार में अपनी तुलना वह स्वयं ही हैं।

गेहे अँगुरिया ललन की, नँद चलन सिखावत।
 अरबराइ गिरि परत हैं, कर टेकि उठावत॥
 बार-बार बकि स्याम सौं कछु बोल बुलावत।
 दुहुँघाँ द्वै दँतुली भई, मुख अति छबि पावत॥
 कबहुँ कान्ह-कर छाँड़ि नँद, पग द्वैक रिंगावत।
 कबहुँ धरनि पर बैठि कै, मन मैं कुछ गावत॥
 कबहुँ उलटि चलैं धाम कौं, घुटुरुनि करि धावत।
 सूर स्याम-मुख लखि महर, मन हरष बढ़ावत॥

व्याख्या: श्री नन्दजी अपने लाल की अंगुली पकड़कर उन्हें चलना सिखला रहे हैं। श्याम लड़खड़ा कर गिर पड़ते हैं। तब हाथ का सहारा देकर उन्हें उठाते हैं। बार-बार श्याम से कुछ कहकर उनसे भी कुछ बुलवाते हैं। मोहन के मुख में दोनों ओर ऊपर-नीचे दो-दो दँतुलियां निकल आयी हैं, इससे उनका मुख अत्यन्त शोभित हो रहा है। कभी कन्हाई श्री नन्द जी का हाथ छोड़कर दो पग चलता है, कभी पृथ्वी पर बैठकर मन ही मन कुछ गाता है। कभी मुड़कर घुटनों के बल भागता घर के भीतर की ओर चल पड़ता है। सूरदास जी कहते हैं—श्याम सुन्दर का मुख देख-देखकर ब्रजराज के हृदय में आनन्द बढ़ता जाता है।

राग धनश्री

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी।
 जो मन मैं अभिलाष करति ही, सो देखति नँद-धरनी॥
 रुनुक-झुनुक नूपूर पग बाजत, धुनि अतिहीं मन-हरनी।
 बैठि जात पुनि उठत तुरतहीं सो छबि जाइ न बरनी॥
 ब्रज-जुवती सब देखि थकित भई, सुंदरता की सरनी।
 चिरजीवहु जसुदा कौ नंदन सूरदास कौं तरनी॥

व्याख्या: कन्हाई अब पृथ्वी पर दो-दो पग चल लेता है। श्रीनन्दरानी अपने मन में जो अभिलाषा करती थी, उसे अब प्रत्यक्ष देख रही है।

मोहन के चरणों में रुनझुन नुपूर बजते हैं। जिसकी ध्वनि मन को अतिशय हरण करने वाली है। वे बैठ जाते हैं और फिर तुरन्त उठ खड़े होते हैं—इस शोभा का तो वर्णन ही नहीं हो सकता। सुन्दरता के इस अद्भुत ढंग को देखकर ब्रज की सब युवतियां चकित हो गयी हैं। सूरदास के जिस मनसागर की नौका रूप श्री यशोदानन्दन चिरंजीवी हों।

राग बिलावल

चलत स्यामघन राजत, बाजति पैंजनि पग-पग चारु मनोहर।
डगमगात डोलत आँगन मैं, निरखि बिनोद मगन सुर-मुनि-नर॥
उदित मुदित अति जननि जसोदा, पाछैं फिरति गहे अँगुरी कर।
मनौ धेनु तुन छाँड़ि बच्छ-हित, प्रेम द्रवित चित स्रवत पयोधर॥
कुंडल लोल कपोल बिराजत, लटकति ललित लटुरिया भू पर।
सूर स्याम-सुंदर अवलोकत बिहरत बाल-गोपाल नंद-घर॥

व्याख्या: घनश्याम चलते हुए अत्यन्त शोभित होते हैं, सुन्दर मनोहरी पैंजनी प्रत्येक पग रखने के साथ बज रही है। आँगन में कन्हाई डगमागते हुए चलते हैं, उनकी इस क्रीड़ा को देखकर देवता, मुनि तथा सभी मनुष्य आनन्दमय हो रहे हैं। माता यशोदा को अत्यन्त आनन्द आ रहा है, वे हाथ से मोहन की अंगुली पकड़े साथ-साथ घूम रही हैं। मानो बछड़े के प्रेम से गाय ने तृण चरना छोड़ दिया है। उनका हृदय प्रेम से विचल गया है और स्तनों से दूध टपक रहा है। मोहन के कपोलों पर चंचल कुण्डल शोभा दे रहे हैं, भौंहों तक सुन्दर बालों की लटें लटक रही हैं। बाल गोपाल रूप से ब्रजराज नन्द जी के भवन में क्रीड़ा करते श्यामसुन्दर को सूरदास देख रहे हैं।

राग गौरी

भीतर तैं बाहर लौं आवत।

घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत॥

गिरि-गिरि परत, जात नहिं उलँधी, अति स्त्रम होत नधावत।
 अहुँठ पैग बसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत॥
 मन ही मन बलबीर कहत हैं ऐसे रंग बनावत।
 सूरदास प्रभु अगनित महिमा, भगतनि कै म भावत॥

व्याख्या: कन्हाई घर के भीतर से अब बाहर तक आ जाते हैं। घर में और आंगन में चलना अब उनके लिए सुगम हो गया है। किन्तु देहली रोक लेती हैं। उसे लांघा नहीं जाता है। लाँघने में बड़ा परिश्रम होता है। बार-बार गिर पड़ते हैं। बलराम जी यह देखकर मन ही मन कहते हैं—इन्होंने बामननावतार में पूरी पृथ्वी को तीन पग में नाप ली थी और रंग-ढंग ऐसे बनाये हैं कि घर की देहली इन्हें रोक रही है। सूरदास के स्वामी की महिमा गणना में नहीं आती, वह भक्तों के चित्त को रुचती (आनन्दित करती) है।

राग धनाश्री

चलतत देखि जसुमति सुख पावै।
 ठुमुकि-ठुमुकि पग धरनी रेंगत, जननी देखि दिखावै॥
 देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इत हीं कौं आवे।
 गिरि-गिरि परत बनत नहिं नाँघत सुर-मुनि सोच करावै॥
 कोटि ब्रह्मंड करत छिन भीतर, हरत बिलंब न लावै।
 ताकौं लिये नंद की रानी, नाना खेल खिलावै॥
 तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम-क्रम करि उतरावै।
 सूरदास प्रभु देखि-देखि, सुर-नर-मुनि बुद्धि भुलावै॥

व्याख्या: कन्हाई को देखकर माता यशोदा आनन्दित होती हैं। वे पृथ्वी पर ठुमुक-ठुमुक कर चरण रखकर चलते हैं और माता को देखकर उसे (अपना चलना) दिखलाते हैं कि मैया! अब मैं चलने लगा। देहली तक चले जाते हैं और फिर बार-बार इधर ही (घर में) लौट आते हैं। (देहली लाँघने में) गिर-गिर पड़ते हैं, लाँघने नहीं बनता, इसी क्रीड़ा से ये देवताओं और मुनियों के मन में भी संदेह उत्पन्न कर देते

हैं कि जो करोड़ों ब्रह्माण्डों का एक क्षण में निर्माण कर देते हैं और फिर उनको नष्ट करने में भी देर नहीं लगाते, उन्हें अपने साथ लेकर श्री नन्दरानी नाना प्रकार के खेल खेलती हैं। जब देहली लाँघते समय गिर पड़ते हैं, तब श्री यशोदा जी हाथ पकड़कर श्याम सुन्दर को धीरे-धीरे देहली पार कराती हैं। सूरदास के स्वामी को देख-देखकर देवता, मनुष्य और मुनि भी अपनी बुद्धि विस्मृत कर देते हैं।

राग भैरव

सो बल कहा भयौ भगवान?

जिहिं बल मीन-रूप जल थाह्यौ, लियौ निगम, हति असुर-परान॥
जिहिं बल कमठ-पीठि पर गिरि धरि, सजल सिंधु मथि कियौ बिमान॥
जिहिं बल रूप बराह दसन पर, राखी पुहुमी पुहुप समान॥
जिहिं बल हिरनकसिप-उर फार्यौ, भए भगत कौं कृपानिधान॥
जिहिं बल बलि बंधन करि पठ्यौ, बसुधा त्रैपद करी प्रमान॥
जिहिं बल बिप्र तिलक दै थाप्यौ, रच्छा करी आप बिदमान॥
जिहिं बल रावन के सिर काटे, कियौ बिभीषन नृपति निदान॥
जिहिं बल जामवंत-मद मेट्यौ, जिहिं बल भू-बिनती सुनि कान॥
सूरदास अब धाम-देहरी चढ़ि न सकत प्रभु खरे अजान॥

व्याख्या: भगवन्! आपका वह बल क्या हो गया? जिस बल से आपने मत्स्यावतार धारण करके जब भी जो चाहा किया और असुर हमग्रीव को मारकर वेदों को ले आये। जिस बल से आपने कच्छप रूप लेकर पीठ पर सुमेरु पर्वत को धारण किया और जिस बल से क्षीर सागर का मन्थन करके स्वर्ग की प्रतिष्ठा की, जिस बल से वाराहरूप धारण कर पृथ्वी को आपने दांतों पर एक पुष्प के समान उठा लिया। जिस बल से (नृसिंह रूप धारण करके) हिरण्यकशिपु का हृदय आपने चीर डाला था और अपने भक्त प्रह्लाद के लिए कृपानिधान बन गये, जिस बल से आपने पृथ्वी को तीन पग में नाप लिया और राजा बलि को बांधकर सुतल भेज दिया, जिस बल से स्वयं उपस्थित होकर आपने परशुराम रूप में ब्राह्मणों की रक्षा की और उन्हें

राज्यतिलक देकर प्रतिष्ठित किया (पृथ्वी का राज्य ब्राह्मणों को दे दिया) जिस बल से आपने (रामावतार से) रावण के मस्तक काटे और विभीषण को लंका का निर्भय नरेश बनाया, जिस बल से इन्द्र युद्ध करके जाम्बवान् के बल गर्व को आपने दूर किया और जिस बल से पृथ्वी की प्रार्थना सुनी। भू-भार हरण के लिए अवतार लिया वह बल कहाँ गया? सूरदासजी कहते हैं—प्रभो! आप तो अब सचमुच अनजान (भोले शिशु) बन गये हैं और घर की देहली पर भी चढ़ नहीं पाते हैं।

राग आसावरी

देखो अद्भुत अबिगत की गति, कैसो रूप धर्यौ है (हो) !
 तीनि लोक जाकें उदर-भवन, सो सूप कैँ कोन पर्य्या है (हो) !
 जाकैं नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग व्रत साध्यौ (हो) !
 ताकौ नाल छीनि ब्रज-जुवती बाँटि तगा सौँ बाँध्यौ (हो) !
 जिहिं मुख कौँ समाधि सिव साधी आराधन ठहराने (हो) !
 सो मुख चूमति महारि जसोदा, दूध-लार लपटाने (हो) !
 जिन स्रवननि जन की बिपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै (हो) !
 तिन स्रवननि ह्वै निकट जसोदा, हलरावै अरु गावै (हो) !
 बिस्व-भरन-पोषन, सब समरथ, माखन-काज अरे हैं (हो) !
 रूप बिराट कोटि प्रति रोमनि, पलना माँझ परे हैं (हो) !
 जिहिं भुज बल प्रह्लाद उबार्यौ, हिरनकसिप उर फारे (हो) !
 सो भुज पकरि कहति ब्रजनारी, ठाढ़े होहु लला रे (हो) !
 जाकौ ध्यान न पायौ सुर-मुनि, संभु समाधि न टारी (हो) !
 सोई सूर प्रगट या ब्रज मैं, गोकुल-गोप-बिहारी (हो) !

व्याख्या: अविज्ञात-गति प्रभु की यह अद्भुत लीला को देखो! इन्होंने कैसा रूप धारण किया है। तीनों लोक जिसके उदररूपी भवन में रहते हैं, वह अवतार लेकर सूप के कोने में पड़ा था। जिसकी नाभि से निकले, कमलनाल से ब्रह्माजी तथा ब्रह्माणों से सभी देवता उत्पन्न हुए, जिन्होंने सभी योग और व्रतों की साधना की, उसी परम पुरुष की नाल को काटकर ब्रजयुवतियों ने बंटे हुए धागे से बांधा है। जिस

श्रीमुख का दर्शन करने के लिए आराधना में एकाग्र होकर शंकर जी समाधि लगाते हैं, दूध की लार से सने उसी मुख का ब्रजरानी यशोदाजी चुम्बन करती हैं। जिन कानों से भक्तों की विनति सुनकर गरुड़ को भी छोड़कर प्रभु दौड़ पड़ते हैं, उन्हीं कानों के निकट मुख ले जाकर यशोदा जी थपकी देते हुए लोरी गाती हैं। जो पूरे विश्व का भरण-पोषण करते हैं और जो सर्वसमर्थ हैं, वे मक्खन पाने के लिए हठ कर रहे हैं। जिनके विराट रूप के एक-एक रोम में कोटि-कोटि ब्राह्मण हैं, वे पालने में पड़े हैं। जिस भुजा के बल से हिरण्यकशिपु का हृदय फाड़कर प्रह्लाद की रक्षा की, आज उसी भुजा को पकड़कर ब्रज की नारियाँ कहती हैं—‘लाल! खड़ा तो हो जा!’ जिसको देवता और मुनि ध्यान में भी नहीं पाते, शंकर जी जिनसे समाधि नहीं हटा पाते, सूरदास जी कहते हैं कि वही प्रभु गोकुल में गोप क्रीड़ा करने के लिए इस ब्रजभूमि में प्रकट हुए हैं।

राग अहीरी

साँवरे बलि-बलि बाल-गोबिंद। अति सुख पूरन परमानंद॥
तीनि पैड जाके धरनि न आवै। ताहि जसोदा चलन सिखावै॥
जाकी चितवनि काल डराई। ताहि महरि कर-लकुटि दिखाई॥
जाकौ नाम कोटि भ्रम टारै। तापर राई-लोन उतारै॥
सेवक सूर कहा कहि गावै। कृपा भई जो भक्तिहिं पावै॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर! बाल गोविन्द! तुम पर बार-बार बलिहारी। तुम अत्यन्त सुखदायी तथा पूर्ण परमानन्द रूप हो। देखो तो पूरी पृथ्वी वामनावतार में जिनके तीन पग भी नहीं हुई थी, उसी को मैया यशोदा चलना सीखा रही हैं। जिसे देखने से काल भी भयभीत हो जाता है ब्रजरानी ने हाथ में छड़ी लेकर उसे डाँटा। जिसका नाम ही करोड़ों भ्रमों को दूर कर देता है। नजर न लगे इसलिए मैया उसका नमक-राई उतारती हैं। यह सेवक सूरदास आपके गुणों का कैसे वर्णन करे। आपकी भक्ति मुझे यदि मिल जाये तो यह आपकी कृपा हुई समझूँगा।

राग आसवरी

आनंद-प्रेम उमंगि जसोदा, खरी गुपाल खिलावै।
 कबहुँक हिलकै-किलकै जननी मन-सुख-सिंधु बढावै॥
 दै करताल ब्रजावति, गावति, राग अनूप मल्हावै।
 कबहुँक पल्लव पानि गहावै, आंगन माँझ रिंगावै॥
 सिव, सनकादि, सुकादि, ब्रह्मादिक खोजत अंत न पावै।
 गोद लिये ताकौं हलरावै तोतरे बैन बुलावै॥
 मोहे सुर, नर, किन्नर, मुनिजन, रबि रथ नाहिं चलावै।
 मोहि रहीं ब्रज की जुवती सब, सूरदास जस गावै॥

व्याख्या: आनन्द और प्रेम से उमंग में भरी यशोदाजी खड़ी होकर गोद में लेकर गोपाल को खिला रही हैं। कभी वे उछलते हैं, कभी किलकारी मारते हैं। जिससे मैया के सुख सागर को अभिवाधित करते हैं। माता ताली बजाती हैं और अनुपम राग से लोरी गाकर दुलार करती हैं। कभी अपने पल्लव के समान कोमल हाथ पकड़कर आंगन में चलाती हैं। शिव सनकादि ऋषि, शुकदेवादि परहंस तथा ब्रह्मादि देवता दूढ़कर भी जिनका पार नहीं पाते, मैया उन्हीं को गोद में लेकर झुलाती है और तोतली वाणी बुलवाती है। देवता, मनुष्य, किन्नर तथा मुनिगण सब इस लीला को देखकर मुग्ध हो रहे हैं, सूर्य अपने रथ को आगे नहीं चलाते हैं, ब्रज की सभी युवतियां इस लीला पर मुग्ध हो रही हैं। सूरदास जी इन्हीं श्याम का सुयश गा रहे हैं।

राग कान्हरो

हरि-हरि हँसत मेरौ माधैया।
 देहरि चढ़त परत गिरि-गिरि, कर-पल्लव गहति जु मैया॥
 भक्ति-हेत जसुदा के आगैं, धरनी चरन धरैया।
 जिनि चरननि छलियौ बलि राजा, नख गंगा जु बहैया॥
 जिहिं सरूप मोहे ब्रह्मादिक, रबि-ससि कोटि उगैया।
 सूरदास तिन प्रभु चरननि की, बलि-बलि मैं बलि जैया॥

व्याख्या: हरि-हरि! कितने आनन्द की बात है कि मेरा माधव हंस रहा है। देहली पर चढ़ते समय वह बार-बार गिर पड़ता है। मैया उसके कर पल्लवों को पकड़कर सहारा देती हैं। भक्ति के कारण प्रेम-परवश माता यशोदा के आगे पृथ्वी पर चरण रख रहा है (अवतरित हुआ है) जिन चरणों से जगत् को तीन पग में नापकर बाकी राजा को उसने हवा और अपने चरणों से गंगा जी को उत्पन्न कर प्रवाहित किया, जिसके स्वरूप से ब्रह्मादि देवता मोहित हो रहे हैं, जिस चरण के चरण से करोड़ों सूर्य-चन्द्र आते हैं। सूरदास जी कहते हैं—अपने स्वामी के उन्हीं चरणों पर बार-बार मैं बलिहारी जाता हूँ।

झुनक स्याम की पैजनियाँ।

जसुमति-सुत कौ चलन सिखावति, अँगुरी गहि-गहि दोउ जानियाँ॥
स्याम बरन पर पीत झँगुलिया, सीस कुलहिया चौतनियाँ॥
जाकौ ब्रह्मा पार न पावत, ताहि खिलावति ग्वालिनियाँ॥
दूरि न जाहु निकट ही खेलौ, मैं बलिहारी रँगनियाँ॥
सूरदास जसुमति बलिहारी, सुतहिं खिलावति लै कनियाँ॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर की पैजनी रुनझून-रुनझून कर रही हैं। माता रोहिणी और मैया यशोदा दोनों जनी अंगुली पकड़कर अपने पुत्र को चलना सिखला रही हैं। कन्हैया के श्याम रंग के शरीर पर पीला कुर्ता है और मस्तक पर चौकोर टोपी है। जिसका पार ब्रह्मा जी भी नहीं पा सकते, उसी को गोपियाँ खिला रही हैं। मैया कहती हैं—‘लाल! मैं तुम्हारे घुटने सरकने (रिंगण) पर बलिहारी हूँ। दूर मत जाओ। मेरे पास ही खेलो! सूरदास जी कहते हैं कि यशोदा जी अपने पुत्र पर न्योछावर हो रही हैं, वे उन्हें गोद में लेकर खेला रही हैं।

चलत लाल पैजनि के चाड़।

पुनि-पुनि होत नयौ-नयौ आनँद, पुनि-पुनि निरखत पाड़॥

छोटौ बदन छोटियै झिंगुली, कटि किंकिनी बनाड़।

राजत जंत्र-हार, केहरि-नख पहुँची रतन-जराड़॥

भाल तिलक पख स्याम चखौड़ा जननी लेति बलाड़।

तनक लाल नवनीत लिए कर सूरज बलि-बलि जाड़॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर नूपुर-ध्वनि से आनन्दित होकर चलते हैं। बार-बार उन्हें उल्लास (आनन्द) होता है। बार-बार वे अपने चरणों को देखते हैं। छोटा-सा मुख है, छोटा-सा कुर्ता पहने हैं, और कोट में करघनी सजी है। गले में यन्त्रयुक्त हार तथा बधनखा शोभित है। भुजाओं में रत्नजड़ित पहुँची हैं, ललाट पर तिलक लगा है तथा काला डिठौना है। माता उनकी बलैया ले रही हैं, लाल अपने हाथ पर थोड़ा-सा माखन लिये हैं। उनकी इस छटा पर सूरदास बार-बार बलिहारी जाता है।

जब तैं आँगन खेलत दैख्यौ, मैं जसुदा कौ पूत री।
तब तैं गृह सौं नातौं टूट्यौ, जैसैं काँचों सूत री॥
अति बिसाल बारिज-दल-लोचन, राजति काजर-रेख री।
इच्छा सौं मकरंद लेत मनु अलि गोलक के बेष री॥
स्रवन सुनत उतकंठ रहत हैं, जब बोलत तुतरात री।
उमँगै प्रेम नैन-मग ह्वै कै, कापै रोक्क्यौ जात री।
दमकति दोउ दूध की दँतियाँ, जगमग जगमग होति री।
मानौ सुंदरता-मंदिर मैं रूप-रतन की ज्योति री॥
सूरदास देखैं सुंदर मुख, आनंद उर न समाइ री।
मानौ कुमद कामना-पूरन, पूरन इंदुहिं पाइ री॥

व्याख्या: दूसरी गोपिका कहती है—'सखी! जब से मैंने यशोदानन्दन को आँगन में खेलते देखा है, तब से घर का सम्बन्ध तो ऐसे टूट गया है जैसे कच्चा सूत टूट जाये। उनके अत्यन्त बड़े-बड़े कमलदल के समान लोचनों में काजल की रेखा इस प्रकार शोभित थी, मानो नेत्र गोलक का वेष बनाकर भ्रमर बड़ी चाह से मकरन्द ले रहे हों। जब वे तुतलाते हुए बोलते हैं तब उस वाणी को सुनने के लिए कान उत्कण्ठित हो रहते हैं और नेत्रों के मार्ग से प्रेम उमड़ पड़ता है। भला किससे वे अश्रु रोके जा सकते हैं। दूध की दोनों दंतुलियां प्रकाशित होते हैं, उनकी ज्योति इस प्रकार जगमग-जगमग करती है मानो सौन्दर्य के मन्दिर में रूप के रत्न की ज्योति हो। सूरदास जी कहते हैं कि उस सुन्दर मुख को देखकर हृदय में आनन्द समाता नहीं, मानो पूर्ण चन्द्रमा को पाकर कमदिनों की कामना पूर्ण हो गयी हो।

राग धनाश्री

जसोदा, तेरौ चिरजीवहु गोपाल।
 बेगि बढै बल सहित बिरध लट, महारि मनोहर बाल॥
 उपजि परयौ सिसु कर्म-पुण्य-फल, समुद्र-सीप ज्यौं लाल।
 सब गोकुल कौ प्रान-जीवन-धन, बैरिन कौ उर-साल॥
 सूर कितौ सुख पावत लोचन, निरखत घुटुरुनि चाल।
 झारत रज लागे मेरी अँखियनि रोग-दोष-जंजाल॥

व्याख्या: यशोदा तुम्हारा गोपाल चिरंजीवी हो, ब्रजरानी! तुम्हारा यह मनोहर बालक बलराम के साथ शीघ्र बड़ा हो और दीर्घायु को प्राप्त हो। पुण्य कर्मों के फल से यह शिशु इस प्रकार उत्पन्न हुआ है। मानो समुद्र की सीप में मोती के बदले अचानक लाल उत्पन्न हो जाये। समस्त गोकुल का यह प्राण है, जीवन-धन है और शत्रुओं के हृदय का कांटा है। सूरदास जी कहते हैं इसका घुटनों चलना देखकर नेत्र कितना असीम आनन्द प्राप्त करते हैं। गोपिका यह आशीर्वाद देकर मोहन के शरीर में लगी धूल झाड़ती है और कहती है—‘इस लाल के सब रोग-दोष एवं संकट मेरी इस आंखों को लग जायें।’

राग बिलावल

कल बल के हरि आरि परे।
 नव रँग बिमल नवीन जलधि पर, मानहुँ द्वै ससि आनि अरे॥
 जे गिरि कमठ सुरासुर सर्पहिं धरत न मन मैं नैकु डरे।
 ते भुज भूषन-भार परत कर गोपिनि के आधार धरे॥
 सूर स्याम दधि-भाजन-भीतर निरखत मुख मुख तैं न टरे।
 बिबि चंद्रमा मनौ मथि काढ़े, बिहँसनि मनहुँ प्रकास करे॥

व्याख्या: तोतली बोली बोलते हुए श्याम मचल रहे हैं। दही मथने का मटका पकड़कर वे ऐसे लग रहे हैं, जैसे नवीन रंग वाले निर्मल नये समुद्र पर दो चंद्रमा आकर रूके हों। जिस भुजा से समुद्र-मन्थन

के समय मन्दराचल को, कच्छप को, देवताओं तथा दैत्यों को एवं वासुभि नाग को धारण करते समय मन में तनिक भी डरे नहीं; वही भुजाएं आज आभूषणों के भार से गिर पड़ती हैं। उन्हें गोपियों के हाथ के आधार (गोपी की भुजा पर) रखे हुए हैं। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर दही के मटके के भीतर अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखते हुए, माता के मुख के पास से अपना मुख हटाते नहीं हैं। ऐसा लगता है मानो समुद्रमन्थन करके दो चन्द्रमा निकल गये हैं। बार-बार हंसना ही मानो चन्द्रमा का प्रकाश हो रहा है।

जब दधि-मथनी टेकि अरै।

आरि करत मटुकी गहि मोहन, वासुकि संभु डरै॥

मंदर डरत, सिंधु पुनि काँपत, फिरि जनि मथन करै।

प्रलय होइ जनि गहाँ मथानी, प्रभु मरजाद टरै॥

सुर अरु असुर ठाढ़े सब चितवत, नैननि नीर ढरै।

सूरदास मन मुग्ध जसोदा, मुख दधि-बिंदु परै॥

व्याख्या: जब श्याम सुन्दर दही मथने की मथनी पकड़कर अड़ गये, उस समय वे तो मटका पकड़कर मचल रहे थे, किन्तु वासुकिनाग तथा शंकर जी डरने लगे, मन्दराचल डर गया, समुद्र कांपने लगा कि कहीं फिर से समुद्रमन्थन न करने लगे। वे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे—‘प्रभो! मथानी मत पकड़ो, कहीं प्रलय न हो जाये। अन्यथा सृष्टि की मर्यादा भंग हो जायेगी।’ सभी देवता और दैत्य खड़े-खड़े देख रहे हैं, उसके नेत्रों में आंसू बह रहे हैं कि फिर समुद्र मथना पड़ेगा। सूरदासजी कहते हैं यह सब देवलोक में हो रहा है परन्तु गोकुल में दही मथने के कारण श्याम के मुख पर दही के छींटें पड़ रहे हैं, जिन्हें देखकर मैया यशोदा का मन मुग्ध हो रहा है।

राग विलावल

जब दधि-रिपु हरि हाथ लियौ।

खगपति-अरि डर, असुरनि-संका, बासर-पति आनंद कियौ॥

बिदुखि-सिंधु सकुचत, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ?
अति अनुराग संग कमला-तन, प्रफुलित अँग न समात हियौ॥
एकनि दुख, एकनि सुख उपजत, ऐसौ कौन बिनोद कियौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे गहत ही एक-एक तैं होत बियौ॥

व्याख्या: जब श्रीकृष्ण जी ने मथानी हाथ में ली, तब वासुकिनाग डरे कहीं मुझे फिर समुद्र मथने के लिए रस्सी न बनना पड़े। दैत्यों के मन में शंका हुई हमें फिर कहीं समुद्र न मथना पड़े। सूर्य को आनन्द हुआ कि अब प्रलय होगी और मेरा नित्य का भ्रमण बन्द होगा। कष्ट के भय से समुद्र संकुचित हो उठा मैं फिर मथा जाऊँगा शंकर जी सोचने लगे एक बार तो किसी प्रकार विषपान कर लिया था, परन्तु दुबारा विष कैसे पिया जायेगा। लक्ष्मी जी प्रभु से पुनः विवाह के विचार से अत्यन्त प्रेम के कारण पुलकित हो उठीं, उनका हृदय आनन्द के मारे शरीर में समाता नहीं है। सूरदासजी कहते हैं—प्रभो! आपने ऐसा यह क्या विनोद किया है। जिससे कुछ को सुख और कुछ को दुख हो रहा है। आपके मथानी पकड़ते ही एक-एक करके यह कुछ दूसरा ही (समुद्र मन्थन का) दृश्य हो गया है।

राग धनाश्री

जब मोहन कर गही मथानी।

परसत कर दधि-माट, नेति, चित उदधि, सैल, बासुकि भय मानी॥
कबहुँक तीनि पैग भुव मापत, कबहुँक देहरि उलँधि न जानी!
कबहुँक सुर-मुनि ध्यान न पावत, कबहुँ खिलावति नंद की रानी!
कबहुँक अमर-खीर नहिं भावत, कबहुँक दधि-माखन रुचि मानी।
सूरदास प्रभु की यह लीला, परति न महिमा सेष बखानी॥

व्याख्या: मोहन ने जब हाथ से मथानी पकड़ी, तब उनके दही के मटके और रस्सी में हाथ लगते ही समुद्र मन्दराचल तथा वासुकिनाग अपने मन में डरने लगे। कभी तो ये विराट रूप से तीन पग में पूरी पृथ्वी नाप लेते हैं और कभी देहली पार करना भी इन्हें नहीं आता,

कभी तो देवता, मुनिगण इन्हें ध्यान में भी नहीं पाते और कभी श्रीनन्दरानी यशोदाजी गोद में खिलाती हैं। कभी देवताओं द्वारा अर्पित खीर भी इन्हें रुचिकर नहीं लगती और कभी दही और मक्खन बहुत प्रिय लगता है। सूरदास के स्वामी की यह लीला है, उनकी महिमा का वर्णन शेषजी के लिए भी असम्भव है।

राग बिलावल

नंद जू के बारे कान्ह, छाँड़ि दै मथनियाँ।
 बार-बार कहति मातु जसुमति नंदरनियाँ॥
 नैकु रहौ माखन देउँ मेरे प्रान-धनियाँ।
 आरि जनि करौ, बलि-बलि जाउँ हौं निधनियाँ॥
 जाकौ ध्यान धरैं सबै, सुर-नर-मुनि जनियाँ।
 ताकौ नंदरानी मुख चूमै लिये कनियाँ॥
 सेष सहस आनन गुन गावत नहिं बनियाँ।
 सूर स्याम देखि सबै भूलीं गोप-धनियाँ॥

व्याख्या: यशोदा माता बार-बार कहती हैं—“ब्रजराज के लाड़ले कन्हैया! मथानी छोड़ तो दे। मेरे प्राणधन लाल! तनिक रुक जा, मैं तुझे अभी मक्खन देती हूँ। मैं कंगालिनी तुझ पर बार-बार न्योछावर हूँ, हठ मत कर।” जिसका देवता, मनुष्य तथा मुनिगण ध्यान किया करते हैं, श्री नन्दरानी उसी को गोद में लिये उसका मुख चूम रही है। शेषजी सहस्र मुख से भी जिनका गुणगान नहीं कर पाते, सूरदास जी कहते हैं कि उसी श्याम सुन्दर को देखकर गोप-नारियाँ अपने आप को भूल गयी हैं।

जसुमति दधि मथन कराति, बैठे बर धाम अजिर,
 ठाढ़े हरि हँसत नान्हि दँतियनि छबि छाजै।
 चितवत चित लै चुराइ, सोभा बरनि न जाइ,
 मनु मुनि-मन-हरन-काज मोहिनी दल साजै॥

जननि कहति नाचौ तुम, दैहों नवनीत मोहन,
 रुनक-झुनक चलत पाइ, नूपुर-धुनि बाजै।
 गावत गुन सूरदास, बढ़ायौ जस भुव-अकास,
 नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै॥

व्याख्या: परमश्रेष्ठ नंदभवन के आंगन में दही मथती हुई श्री यशोदाजी बैठी हैं। उनके पास खड़े श्याम हंस रहे हैं, उनके छोटे-छोटे दांतों की छटा शोभित हो रही है। देखते ही वह चित्त चुरा लेती है। उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता है, मानो मुनियों का मन हरने के लिए मोहिनियों का दल सज्जित हुआ है। मैया कहती हैं—‘मोहन! तुम नाचो तो तुम्हें माखन दूँगी।’ वे नाचने लगते हैं, पैरों के चलने से रुनझुन-रुनझुन नूपुर बज रहे हैं। सूरदास अपने प्रभु का गुणगान करते हैं कि त्रिलोक के स्वामी भक्तवत्सलतावश माखन के लिए नाच रहे हैं।

राग आसावरी

(एरी) आनंद सौं दधि मथति जसोदा, घमकि मथनियाँ घूमै।
 निरतत लाल ललित मोहन, पग परत अटपटे भू मैं॥
 चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छबि मुक्ता ताहू मैं।
 मनु मकरंद-बिंदु लै मधुकर, सुत प्यावन हित झूमै॥
 बोलत स्याम तोतरी बतियाँ, हँसि-हँसि दतियाँ दूमै।
 सूरदास वारी छबि ऊपर, जननि कमल-मुख चूमै॥

व्याख्या: गोपिका कहती है सखी! मैया यशोदा आनन्द से दही मथ रही हैं, उनकी मथानी घरघराती हुई घूस रही है। परम सुन्दर मोहन लाल नाच रहे हैं, उनके चरण अटपटे भाव से पृथ्वी पर पड़ रहे हैं। उनके ललाट पर काजल का बिन्दु लगा है। उस पर घुंघराली अलकें झूम रही हैं और उनके मोती गूँथे हैं, इन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो भ्रमर मकरन्द लेकर उसे अपने पुत्र को पिलाने के लिए झूम रहे हैं। श्याम सुन्दर हंस-हंसकर तोतली बातें कहते हैं, उनकी दंतुलियां

चमक रही हैं। सूरदास जी कहते हैं, उनकी दंतुलियां चमक रही हैं। सूरदास जी कहते हैं कि उनकी शोभा पर न्योछावर हुई माता उनके मल-मुख का चुम्बन करती हैं।

राग बिलावल

त्यौं-त्यौं मोहन नाचै ज्यौं-ज्यौं रई-घमरकौ होइ (री)।
 तैसियै किंकिनि-धुनि पग-नूपुर, सहज मिले सुर दोइ (री)॥
 कंचन कौ कठुला मनि-मोतिनि, बिच बघनहँ रहौ पोइ (री)।
 देखत बनै, कहत नहिं आवै, उपमा कौं नहिं कोइ (री)॥
 निरखि-निरखि मुख नंद-सुवन कौ, सुर-नर आनंद होइ (री)।
 सूर भवन कौ तिमिर नसायौ, बलि गइ जननि जसोइ (री)॥

व्याख्या: जैसे-जैसे मथानी की घटघराहट होती है, वैसे-वैसे ही मोहन नाच रहे हैं। वैसे ही कटिकी और चरणों के नूपुर दोनों के बजने का स्वर स्वाभाविक रूप से मिल गया है। गले में सोने का कठला है, मणि और मोतियों की माला के बीच में बघनखा पिरोया है। यह छटा तो देखते ही बनती है, इसका वर्णन नहीं हो सकता, जिसके साथ इसकी उपमा दी जा सके, ऐसी कोई वस्तु नहीं है। श्री नन्दजी का मुख देख-देखकर देवता तथा मनुष्य सभी आनन्दित हो रहे हैं। सूरदास जी कहते हैं अपनी अंगकान्ति से श्याम सुन्दर भवन के अन्धकार को नष्ट कर चुके हैं। उन्होंने तीनों लोक के तमस को नष्ट कर दिया है। मैया यशोदा उन पर बलिहारी जाती है।

राग कान्हरी

गोद खिलावति कान्ह सुनी, बड़भागिनि हो नंदरानी।
 आनंद की निधि मुख जु लाल कौ, छबि नहिं जाति बखानी॥
 गुन अपार बिस्तार परत नहिं कहि निगमागम-बानी।
 सूरदास प्रभु कौं लिये जसुमति, चितै-चितै मुसुकानी॥

व्याख्या: सुना है महाभाग्यवती श्री नन्दरानी कन्हैया को गोद में लेकर खिलाती हैं। लाल का मुख जो आनन्द का कोष है। उसकी शोभा

का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके गुण अपार हैं, वेद और शास्त्रों के द्वारा भी उनके विस्तार का वर्णन नहीं हो सकता है। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे ऐसे स्वामी को गोद में लेकर यशोदा जी उन्हें देख-देखकर मुस्कराती थीं।

राग देवगंधार

कहन लागे मोहन मैया-मैया।

नंद महर साँ बाबा-बाबा, अरु हलधर साँ भैया॥

ऊँचे चढ़ि-चढ़ि कहति जसोदा, लै लै नाम कन्हैया।

दूरि खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया॥

गोपी-गवाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया।

सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ, चरननि की बलि जैया॥

व्याख्या: मोहन अब 'मैया-मैया' कहने लगे हैं। वे ब्रजराज श्री नन्दजी को 'बाबा' कहते हैं और बलराम जी को 'भैया' कहते हैं। यशोदाजी ऊँची उमरारी पर चढ़कर श्याम का नाम ले लेकर पुकारती हैं— "कन्हैया! मेरे लाल! दूर खेलने मत जाओ! किसी की गाय मार देगी।" गोपियाँ और गोप आनन्द कौतुक मना रहे हैं। घर-घर बधाई बज रही है। सूरदास जी कहते हैं—प्रभो! आपका दर्शन पाने के लिए मैं आपके चरणों पर ही न्योछावर हूँ।

राग आसावरी

बेद-कमल-मुख परसति जननी, अंक लिए सुत रति करि स्याम।

परम सुभग जु अरुन कोमल-रुचि आनंदित मनु पूरन-काम॥

आलंबित जु पृष्ठ बल सुंदर परमपरहि चितवत हरि-राम।

झाँकि-उझाँकि बिहँसत दोऊ सुत, प्रेम-मगन भइ इकटक जाम॥

देखि सरूप न रही कछू सुधि, तोरे तबहिं कंठ तैं दाम।

सूरदास प्रभु-सिसु-लीला-रस, आवहु देखि नंद सुख-धाम॥

व्याख्या: माता यशोदा अपने पुत्र श्याम सुन्दर को प्रेमपूर्वक गोद में लिये हैं, और उनके वेदमय कमलमुख को छू रही हैं, वह श्रीमुख अत्यन्त सुन्दर है, अरुणाभ है और अत्यन्त कोमल है, स्नेह से उसे छूकर माता आनन्दित हो रही हैं। मानो उनकी समस्या, कामनाएं पूर्ण हो गयी हैं। उनकी पीठ के सहारे सुन्दर बलराम जी उझके हैं, बलराम और श्याम सुन्दर परस्पर एक-दूसरे को देख रहे हैं। दोनों पुत्र एक दूसरे को झुककर बार-बार देख रहे हैं। यह शोभा देखकर मैया आनन्दमग्न होकर एक प्रहर को निर्निमेष हो रही हैं। पुत्रों के स्वरूप को देखकर उसे अपनी कुछ सुधि नहीं रह गयी। उसी समय दोनों ने मिलकर माता के गले की माला तोड़ दी। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी की शिशु लीला का आनन्द (जिन्हें देखना हो वे) श्री नन्दजी के आनन्दमय धाम में देख आयें।

राग गौरी

सोभा मेरे स्यामहि पै सोहै।

बलि-बलि जाउँ छबीले मुख की, या उपमा कौं को है॥

या छबि की पटतर दीबे कौं सुकवि कहा टकहोहै?

देखत अंग-अंग प्रति बानक, कोटि मदन-मन छोहै॥

ससि-गन गरि रच्यौ बिधि आनन, बाँके नैननि जोहै।

सूर स्याम-सुन्दरता निरखत, मुनि-जल कौ मन मोहै॥

व्याख्या: 'सुन्दरता तो मेरे श्याम पर ही शोभित होती है। उनके सुन्दर मुख पर बार-बार बलिहारी जाऊँ। जिसके साथ उनकी उपमा ही जा सके, ऐसा है ही कौन? इस सौन्दर्य की तुलना में रखने हेतु कवि क्यों व्यर्थ इधर-उधर कामदेवों का मन मोहित हो जाता है। लगता है कि ब्रह्मा ने अनेको चन्द्रमाओं को निचोड़कर मोहन का मुख बनाया है। अपने तिरछे नयनों से यह श्याम देख रहा है। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर की सुन्दरता का दर्शन करते ही मुनिजनों का मन भी मोहित हो जाता है।

राग सारंग

बाल गुपाल! खेलौ मेरे तात।
 बलि-बलि जाऊँ मुखारबिंद की, अमिय-वचन बोलौ तुतरात॥
 दुहुँ कर माट गह्यौ नंदनंदन, छिटकि बूँद-दधि परत अघात।
 मानौ गज-मुक्ता मरकत पर, सोभित सुभग साँवरे गात॥
 जननी पै माँगत जग-जीवन, दै माखन-रोटी उठि प्रात।
 लोटत सूर स्याम पुहुमी पर, चारि पदारथ जाकैं हाथ॥

व्याख्या: माता कहती हैं—‘मेरे लाल! बाल गोपाल! तुम खेलो। मैं तुम्हारे कमलमुख पर बार-बार बलिहारी जाऊँ। तोतली वाणी से अमृत समान मधुर बात कहो। किन्तु श्री नन्द किशोर ने दोनों हाथों से दही मथने का मटका पकड़ रखा है। मटके में दही मथने के कारण दही की बूँदें छिटक-छिटक कर पर्याप्त मात्रा में उनके शरीर पर गिर रही हैं। उनके सुन्दर पूयामल अंगों पर वे ऐसे शोभा देती हैं, मानो नीलम के ऊपर गजमुक्ता शोभित हो। जगत् के जीवनस्वरूप प्रभु प्रातः उठकर माता से निहोरा करते हैं कि ‘मुझे माखन-रोटी दे। सूरदास जी कहते हैं कि चारों पदार्थ जिनके हाथ में हैं वे ही श्यामसुन्दर माखन-रोटी के लिए पृथ्वी पर लोट रहे हैं।

राग बिलावल

पलना झूलौ मेरे लाल पियारे।
 सुसकनि की वारी हौँ बलि-बलि, हठ न करहु तुम नंद-दुलारे॥
 काजर हाथ भरौ जनि मोहन हैहैं नैना अति रतनारे।
 सिर कुलही, पग पैजनी, तहाँ जाहु जहाँ नंद बबा रे॥
 देख यह बिनोद धरनीधर, मात-पिता बलभद्र ददा रे।
 सुर-नर-मुनि कौतूहल भूले, देखत सूर सबै जु कहा रे॥

व्याख्या: माता कहती हैं—‘मेरे प्यारे लाल! पालने में झूलो। तुम्हारे इस सिसकने पर मैं बलिहारी जाती हूँ। बार-बार मैं तुम्हारी बलैया लूँ

नन्दनन्दन! तुम हठ मत करो। मोहन नेत्रों को मल कर हाथों को काजल से मत भरो। मलने से नेत्र अत्यन्त लाल हो जायेंगे। मस्तक पर टोपी और चरणों में नूपुर पहिनकर वहाँ जाओ, जहाँ नन्दबाबा बैठे हैं।' सूरदासजी कहते हैं कि जगत् के धारणकर्ता प्रभु का यह विनोद माता यशोदा, नन्द बाबा और बड़े भाई बलराम जी देख रहे हैं। देवता, गन्धर्व तथा मुनिगण इस विनोद को देखकर भ्रमित हो गये। सभी देखते हैं कि प्रभु यह क्या लीला कर रहे हैं।

क्रीड़त प्रात समय दोउ बीर।

माखन माँगत, बात न मानत, झँखत जसोदा-जननी तीर॥

जननी मधि, सनमुख संकर्षन खँचत कान्ह खस्यो सिर-चीर।

मनहुँ सरस्वति संग उभय दुज, कल मराल अरु नील कँठीर॥

सुंदर स्याम गही कबरी कर, मुक्त-माल गही बलबीर।

सूरज भष लैबे अप-अपनौ, मानहुँ लेत निबेरे सीर॥

व्याख्या: सुबह के समय दोनों भाई खेल रहे हैं। वे माखन मांग रहे हैं और मैया यशोदा से झगड़ रहे हैं, उसकी भोई दूसरी बात मान नहीं रहे हैं। मैया बीच में है, बलराम उसके आगे है, और पीछे से कन्हैया के खींचने से माता के मस्तक का वस्त्र खिसक गया है। ऐसा लगता है मानो सरस्वती के संग बातल-हंस और मयूर-शिशु ये दोनों पक्षी क्रीड़ा करते हों। श्याम सुन्दर ने माता की चोटी हाथ में पकड़ रखी है और बलराम जी मोती की माला पकड़कर खींच रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि मानो अपना-अपना आहार सर्प और मोती लेने के लिए दोनों पक्षी मयूर और हंस अपने हिस्से का बंटवारा किये लेते हैं।

राग धनाश्री

दधि-सुत जामे नंद-दुवार।

निरखि नैन अरुझ्यौ मनमोहन, रटत देहु कर बारंबार॥

दीरघ मोल कह्यौ ब्यौपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार।

कर ऊपर लै राखि रहे हरि, देत न मुक्ता परम सुहार॥

गोकुलनाथ बए जसुमति के आँगन भीतर, भवन मँझार।
साखा-पत्र भए जल मेलत, फूलत-फरत न लागी बार॥
जानत नहीं मरम सुर-नर-मुनि, ब्रह्मादिक नहिं परत बिचार।
सूरदास प्रभु की यह लीला, ब्रज-बनिता पहिरे गुहि हार॥

व्याख्या: श्री नन्द जी के द्वार पर आज मोती उग आये हैं। उसे नेत्रों के सम्मुख देखते ही श्याम मचल पड़ा; उसने यह बार-बार रट लगा दी कि इसे मेरे हाथ में दो। किन्तु व्यापारी ने बहुत अधिक मूल्य बतलाया, सब लोग उस आश्चर्यमय हार को देखकर मुग्ध रह गये। श्याम ने हार को लेकर हाथ पर रख लिया, वे उन अत्यन्त उत्तम, बनावट के मोतियों को दे नहीं रहे थे। उन गोकुल के स्वामी ने यशोदाजी के आँगन में तथा घर के भीतर बो दिया। जल डालते ही डालियाँ और पत्ते निकल आये, उन्हें फूलते और फलते भी कुछ देर नहीं लगी। सूरदास के स्वामी की इस लीला का भेद देवता, मनुष्य, मुनिगण तथा ब्रह्मादि भी नहीं जान सके; उनकी समझ में ही कोई कारण नहीं आया। किन्तु ब्रज की गोपियों ने तो उनको गूँथकर हार पहिना।

कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढै।
जैसें देखि और ब्रज-बालक, त्यों बल-बैस चढै॥
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यों-त्यों लयौ लढै।
अँचवत पय तातौ जब लाग्यौ, रोवत जीभि डढै॥
पुनि पीवतहीं कच टकटोरत, झूठहिं जननि रढै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढै॥

व्याख्या: माता यशोदा कहती हैं—‘लाल! कृष्णा गाय का दूध पी लो, जिससे तुम्हारी चोरी बढ़ जाए। देखो। जैसे ब्रज के और बालक हैं, उसी प्रकार तुम्हारा भी बल और आयु बढ़ जायेगी।’ इस प्रकार माता ने समझाकर मना लिया। श्याम भी माता की यह बात सुनकर दूध पीने लगे, किन्तु पीते ही जब दूध गरम लगा, तब जिह्वा के जल जाने से रोने लगे। फिर दूध पीते ही बालों को टटोलने लगे मैया झूठ ही आग्रह

कर रही है। सूरदास जी कहते हैं—यशोदा जी अपने पुत्र के मुख को देखकर हँस रही हैं। यह आनन्द मेरे हृदय से बाहर नहीं होता।

राग गौरी

सखा कहत हैं स्याम खिसाने।

आपुहि-आपु बलकि भए ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने?

बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।

हारि-जीत कछु नैकु न समुझत, लरिकनि लावत पाप॥

आपुन हारि सखनि सौं झगरत, यह कवि दियौ पठाइ।

सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाइ॥

व्याख्या: सखा कहने लगे—‘श्याम तो झगड़ालू हैं। अपने-आप ही तो जोश में आकर दौड़ने खड़े हो गये; फिर अब तुम क्रोध क्यों कर रहे हो?’ (इस बात के) बीच में ही बलराम जी बोल पड़े—‘इसके न तो मैया है और न पिता ही। यह हार-जीत को तनिक भी समझता नहीं, (व्यर्थ) बालकों को दोष देता है। स्वयं हारकर सखाओं से झगड़ा करता है।’ यह कहकर (‘घर जाओ!’ यों कहकर) (उन्होंने कन्हैया को) घर भेज दिया। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर रोते हुए उठकर चल पड़े, इससे माता दौड़कर (रोने का कारण पूछने लगीं।

राग सारंग

मैया, मोहि बड़ी करि लै री।

दूध-दही-घृत-माखन-सेवा, जो माँगौ सो दै री॥

कछू हौंस राखै जनि मेरी, जोइ-जोइ मोहि रुचै री।

होउँ बेगि मैं सबल सबनि मैं, सदा रहौं निरभै री॥

रंगभूमि मैं कंस पछारौं, घीसि बहाऊँ बैरी।

सूरदास स्वामी की लीला, मथुरा राखौं जै री॥

व्याख्या: श्रीकृष्ण चन्द्र कहते हैं—‘मैया! मुझे झटपट बड़ा बना ले। दूध, दही, घी, मक्खन, मेवा आदि मैं जो माँगूँ, वही मुझे दिया करा।

मुझे जो-जो रुचिकर हो, वही दे; मेरी कोई इच्छा अधूरी मत रख, जिससे कि मैं शीघ्र ही सबसे बलवान् हो जाऊँ और सदा निर्भय रहा करूँ। अखाड़े में मैं कंस को पछाड़ दूँगा, उस शत्रु को घसीट कर नष्ट कर दूँगा और मथुरा को विजय करके रहूँगा।' सूरदास जी कहते हैं कि यह तो मेरे स्वामी को आगे होने वाली लीला ही है।

राग रामकली

हरि अपनै आँगन कछु गावत।

तनक-तनक चरननि सौं नाचत, मनहीं-मनहिं रिझावत॥

बाँह उठाइ काजरी-धौरी गैयनि टेरि बुलावत।

कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैं आवत॥

माखन तनक आपनै कर लै, तनक बदन मैं नावत।

कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ लौनी लिये खवावत॥

दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।

सूर स्याम के बाल-चरित, नित-नितहीं देखत भावत॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर अपने आँगन में कुछ गा रहे हैं। वे अपने नन्हें-नन्हें चरणों से नाचते जाते हैं और अपने-आप अपने ही चित्त को आनन्दित कर रहे हैं। कभी दोनों हाथ उठाकर 'कजरी' 'धौरी' आदि नामों से गायों को पुकारकर बुलाते हैं, कभी नन्द बाबा को पुकारते हैं और कभी घर के भीतर चले जाते हैं। अपने हाथ पर थोड़ा-सा मक्खन लेकर छोटे-से मुख में डालते हैं, कभी मणिमय खम्भे में अपना प्रतिबिम्ब देखकर मक्खन लेकर उसे खिलाते हैं। श्री यशोदा जी छिपकर यह लीला देख रही हैं। वे हर्षित हो रही हैं, अपनी लीला से प्रभु उनका आनन्द बढ़ा रहे हैं। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर के बालचरित्र नित्य-नित्य देखने में रुचिकर लगते हैं।

राग बिलावल

आजु सखी, हौं प्रात समय दधि मथन उठी अकुलाइ।

भरि भाजन मनि-खंभ निकट धरि, नेति लई कर जाइ॥

सुनत सब्द तिहिं छिन समीप मम हरि हँसि आए धाइ।
 मोह्यौ बाल-बिनोद-मोद अति, नैननि नृत्य दिखाइ॥
 चितवनि चलनि हस्यौ चित चंचल, चितै रही चित लाइ।
 पुलकत मन प्रतिबिंब देखि के, सबही अंग सुहाइ॥
 माखन-पिंड बिभागि दुहूँ कर, मेलत मुख मुसुकाइ।
 सूरदास-प्रभु-सिसुता को सुख, सकै न हृदय समाइ॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी किसी गोपी से कहती हैं—‘सखी! आज सेवरे मैं दही मथने के लिए अतुरतापूर्वक उठी और दही से मटके को करकर मणिमय खम्भे के पास रखकर हाथ में मैंने मथानी की रस्सी पकड़ी। दही मथने का शब्द सुनकर उसी समय श्याम हँसता हुआ मेरे पास दौड़ आया। अपने नेत्रों का चंचल नृत्य दिखलाकर तथा बाल-बिनोद के अत्यन्त आनन्द से उसने मुझे मोहित कर लिया। उस चंचल ने अपने देखने तथा चलने से मेरे चित्त को हरण कर लिया, चित्त लगाकर मैं उसे देखती रही। मणि स्तम्भ में अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह मन ही मन पुलकित हो रहा था, उसके सभी अंग बड़े सुहावने लगते थे। मखन के गोले को दो भाग करके दोनों हाथों पर रखकर एक साथ दोनों हाथों से मुँह में डालते हुए मुस्कराता जाता था, सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी की शिशु-लीला का सुख हृदय में भी समाता नहीं।

राग धनाश्री

पाहुनी, करि दै तनक महौ।
 हौं लागी गृह-काज-रसोई, जसुमति बिनय कहौ॥
 आरि करत मनमोहन मेरो, अंचल आनि गहौ।
 ब्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रहौ॥
 माखन जात जानि नँदरानी, सखी समहारि कहौ।
 सूर स्याम-मुख निरखि मगन भइ, दुहुनि सँकोच सहौ॥

व्याख्या: श्री यशोदाजी ने विनम्र होकर कहा—‘पाहुनी! तनिक दधि-मन्थन कर दो। मैं घर के काम-काज तथा रसोई बनाने में लगी

हूँ और यह मोहन मुझसे मचल रहा है। इसने आकर मेरा आँचल पकड़ लिया है।' आकुलतापूर्वक खाली मटके में ही मन्थन कर रही है, दही तो पृथ्वी पर बहा जाता है। श्री नन्द रानी ने मक्खन पृथ्वी पर जाता समझकर सखी से उसे सँभालने के लिये कहा। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर का मुख देखकर वह मग्न हो गयी, उसने चुपचाप दोनों संकोच सहन कर लिया।

राग बिलावल

मोहन, आउ तुम्हें अन्हवाऊँ।

जमुना तैं जल भरि लै आऊँ, ततिहर तुरत चढ़ाऊँ॥

केसरि कौ उबटनौ बनाऊँ, रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ।

सूर कहै कर नैकु जसोदा, कैसेहुँ पकरि न पाऊँ॥

व्याख्या: माता कहती हैं—'मोहन आओ तुम्हें स्नान कराऊँ। श्री यमुनाजी से जल भर कर ले आऊँ और उसे गरम करने के लिए पात्र में डालकर तुरन्त चूल्हे पर चढ़ा दूँ केसर का उबटन बनाकर मल-मलकर मैल छुड़ा दूँ।' सूरदास जी कहते हैं श्री यशोदा जी कहती हैं कि इस चंचल को किसी भी प्रकार अपने हाथ से मैं पकड़ नहीं पाती।

राग आसावरी

जसुमति जबहिं कह्यौ अन्हवावन, रोइ गए हरि लोटत री।

तेल-उबटनौ लै आगैं धरि, लालहिं चोटत-पोटत री॥

मैं बलि जाउँ न्हाउ जनि मोहन, कत रोवत बिनु काजैं री।

पाछैं धरि राख्यौ छपाइ कै उबटन-तेल-समाजैं री॥

महरि बहुत बिनती करि राखाति, मानत नहीं कन्हैया री।

सूर स्याम अतिहीं बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पैया री॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी ने जब स्नान कराने को कहा तो श्याम सुन्दर रोने लगे और पृथ्वी पर लोटने लगे। माता ने तेल और उबटन

लेकर आगे रख लिया और अपने लाल को पुचकारने-दुलारने लगीं। वे बोली-‘मोहन! मैं तुम पर बलि जाऊँ, तुम स्नान मत करो, किन्तु बिना काम रो क्यों रहे हो?’ उबटन, तेल आदि सामग्री अपने पीछे छिपाकर रख ली। श्री ब्रजरानी अनेक प्रकार से कहकर समझाती हैं, किन्तु कन्हाई मानते ही नहीं। सूरदास जी कहते हैं कि जिनका पार देवता और मुनिगण की नहीं पाते, वे ही श्याम सुन्दर बहुत मचल पड़े हैं।

राम कन्हरौ

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनै, हरिहि लिये चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखौ धौं भरि नैन जुड़ावत॥
चितै रहै तब आपुन ससि-तन, अपने कर लै-लै जु बतावत।
मीठौ लगत किधौ यह खाटौ, देखत अति सुंदर मन भावत॥
मन-ही-मन हरि बुद्धि करत हैं, माता सौं कहि ताहि मँगावत।
लागी भूख, चंद मैं खैहाँ, देहि-देहि रिस करि बिरुझावत॥
जसुमति कहति कहा मैं कीनौं, रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर स्याम कौं जसुमति बोधति, गगन चिरैयाँ उड़त दिखावत॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी अपने आँगन में खड़ी हुई श्याम को गोद में लेकर चन्द्रमा दिखला रही हैं-‘लाल! तुम रोते क्यों हो, मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ, देखो तो- भर आँख देखने से यह नेत्रों को शीतल करता है।’ तब श्याम स्वयं चन्द्रमा की ओर देखने लगे और अपने हाथ उठा-उठाकर दिखलाने लगे कि देखने में तो यह नहीं स्वाद में मीठा लगता है या खट्टा।’ माता से उसे मंगा देने को कहने लगे- ‘मुझे भूख लगी है, मैं चन्द्रमा को खाऊँगा, तू ला दे। ला दे इसे।’ इस प्रकार क्रोध करके झगड़ने लगे। यशोदा जी कहने लगीं-‘मैंने यह क्या किया, जो इसे चन्द्र दिखाया। अब तो मेरा यह मोहन रो रहा है और बहुत ही दुःखी हो रहा है।’ सूरदास जी कहते हैं कि यशोदा जी श्याम सुन्दर को समझा रही हैं, तथा आकाश में उड़ती चिड़ियां उन्हें बहलाने के लिए दिखला रही हैं।

राग धनाश्री

(आछे मेरे) लाल हो, ऐसी आरि न कीजै।
 मधु-मेवा-पकवान-मिठाई जोड़ भावै सोड़ लीजै॥
 सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठौ पय पीजै।
 पा लागौं हठ अधिक करौ जनि, अति रिस तैं तन छीजै॥
 आन बतावति, आन दिखावति, बालक तौ न पतीजै।
 खसि-खसि परत कान्ह कनियाँ तैं, सुसुकि-सुसुकि मन खीजै॥
 जल-पुटि आनि धर्यौ आँगन में, मोहन नैकु तौ लीजै।
 सूर स्याम हठि चंदहि माँगै, सु तौ कहाँ तैं दीजै॥

व्याख्या: लाल! ऐसी हठ नहीं करनी चाहिए। मधु, मेवा, पकवान तथा मिठाइयों में तुम्हें जो अच्छा लगे, 'वह ले लो। तुरन्त का निकला मक्खन है, सजाव दही है, घी है, और मीठा दूध पी लो। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, अब अधिक हठ मत करो; क्रोध करने से शरीर दुर्बल होता है।' यह कहकर माता कुछ दूसरी बातें सुनाती हैं, कुछ अन्य वस्तुएँ दिखाती हैं, फिर भी उनका बालक उनकी बात का विश्वास नहीं करता। कहैया गोद से अंचल कर बार-बार खिसका पड़ता है, सिसकारी मार-मार कर मन-ही-मन खीझ रहा है। तब माता ने जल से भरा बर्तन लाकर आँगन में रखा और बोलीं—'मोहन लो! इसे तनिक अब पकड़ो तो।' सूरदास जी कहते हैं कि श्याम तो हठपूर्वक चन्द्रमा को माँग रहा है, भला उसे कोई कहाँ से दे सकता है।

राम कन्हारौ

बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तोहि लाल बुलावै।
 मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, आपुन खैहै, तोहि खवावै॥
 हाथहि पर तोहि लीन्हे खेलै नैकु नहीं धरनी बैठावै।
 जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै॥
 जल-पुटि आनि धरनि पर राख्यौ, गहि आन्यौ वह चंद दिखावै।
 सूरदास प्रभु हँसि मुसुक्याने, बार-बार दोऊ कर नावै॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी अपने पुत्र को चुप करने के लिए बार-बार कहती है 'चन्द्र! आओ। तुम्हें मेरा लाल बुला रहा है। यह मधु, मेवा, पकवान और मिठाइयाँ स्वयं खायेगा था तुम्हें भी खिलायेगा। तुम्हें हाथ पर ही रखकर खेलेगा, थोड़ी देर के लिए भी पृथ्वी पर नहीं बैठायेगा।' फिर हाथ में पानी से भरा बर्तन उठाकर कहती है—'चन्द्रमा! तुम शरीर धारण करके इसी बर्तन में आ जाओ।' फिर जल का बर्तन लाकर पृथ्वी पर रख दिया और दिखाने लगीं—'लाल! वह चन्द्रमा मैं पकड़ लायी।' सूरदास जी कहते हैं कि जल में चन्द्रबिम्ब देखकर मेरे प्रभु हँस पड़े और मुस्कराते हुए दोनों हाथ पानी में डालने लगे।

राग रामकली

(मेरी माई) ऐसौ हठी बाल गोबिंदा।

अपने कर गहि गगन बतावत, खेलन कौं माँगै चंदा॥

बासन में जल धर्यौ जसोदा, हरि कौं आनि दिखावै।

रुदन करत, दूँढत नहिं पावत, चंद धरनि क्यों आवै!

मधु-मेवा-पकवान-मिठाइ, माँगि लेहु मेरे छौना।

चकई-डोरि पाट के लटकन, लेहु मेरे लाल खिलौना॥

संत-उबारन, असुर-सँहारन, दूरि करन दुख-दंदा।

सूरदास बलि गई जसोदा, उपज्यौ कंस-निकंदा॥

व्याख्या: यशोदा जी कहती हैं—'सखी! मेरा यह बाल गोविन्द ऐसा हठी है कि कुछ न पूछो। अपने हाथ से मेरा हाथ पकड़कर आकाश की ओर देखता है और खेलने के लिए चन्द्रमा माँगता है।' यशोदा जी ने बर्तन में जल भर कर रख दिया है और हरि को लाकर उसमें चन्द्रमा दिखाती हैं। लेकिन श्याम दूँढते हैं तो चन्द्रमा मिलता नहीं, इससे रो रहे हैं। भला चन्द्रमा पृथ्वी पर कैसे आ सकता है। माता कहती है—'मेरे लाल! चकडोर, रेशम के झमके तथा अन्य खिलौने ले लो।' सूरदास जी कहते हैं कि संतों का उद्धार करने वाले, असुरों का संहार करने वाले, सबके समस्त दुःख-द्वन्द्व को दूर करने वाले श्याम पर, जो कंस का विनाश करने अवतरित हुए हैं, मैया यशोदा बार-बार न्योछावर हो रही हैं।

राग केदारौ

मैया, मैं तो चंद-खिलौन लैहों।
 जैहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहों॥
 सुरभी कौ पय पान न करिहों, बेनी सिर न गुहैहों।
 हैहों पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहों॥
 आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहि न जनैहों।
 हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहों॥
 तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहों।
 सूरदास है कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहों॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर कह रहे हैं—मैया! मैं तो यह चन्द्रमा-खिलौने लूँगा यदि तू इसे नहीं देगी तो अभी पृथ्वी पर लोट जाऊँगा, तेरी गोद में नहीं आऊँगा। न तो मैया का दूध पीऊँगा, न सिर में चुटिया गुँथवाऊँगा। मैं अपने नन्द बाबा का पुत्र बनूँगा, तेरा बेटा नहीं बहलाऊँगा।' तब मैया यशोदा हँसती हुई समझाती है और कहती है—'आगे आओ! मेरी बात सुनों, यह बात तुम्हारे दाऊ भैया को मैं नहीं बताऊँगी। तुम्हें मैं नयी पत्नी दूँगी।' यह सुनकर श्याम कहने लगे—'तू मेरी मैया है, तेरी शपथा-सुन! मैं इसी समय ब्याह करने जाऊँगा।' सूरदास जी कहते हैं—प्रभो! मैं आपका कुटिल बाराती बनूँगा और आपके विवाह में मंगल के सुन्दर गीत गाऊँगा।

राग रामकली

मैया री मैं चंद लहाँगौ।
 कहा करौं जलपुट भीतर कौ, बाहर ब्योंकि गहाँगौ॥
 यह तौ झलमलात झकझोरत, कैसें कै जु लहाँगौ?
 वह तौ निपट निकटहीं देखत, बरज्यौ हौं न रहौंगौ॥
 तुम्हरौ प्रेम प्रगट मैं जान्यौ, बौराएँ न बहौंगौ।
 सूरस्याम कहै कर गहि ल्याऊँ ससि-तन-तप-दाप दहौंगे॥

व्याख्या: श्याम ने कहा—'मैया! मैं चन्द्रमा को पा लूँगा। इस पानी के भीतर के चन्द्रमा को मैं क्या करूँगा, मैं तो बाहर वाले को उछलकर पकड़ूँगा। यह तो पकड़ने का प्रयत्न करने पर हिलता है, भला, इसे मैं कैसे पकड़ सकूँगा। वह तो अत्यन्त पास दिखाई पड़ता है, तुम्हारे रोकने से अब रुकूँगा नहीं। तुम्हारे प्रेम को तो मैंने प्रत्यक्ष समझ लिया अब तुम्हारे बहकाने से बहकूँगा नहीं।' सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर कह रहे हैं—मैं चन्द्रमा को अपने हाथों पकड़ लाऊँगा और उसका जो बड़ा घमंड है, उसे नष्ट कर दूँगा।'

राग धनाश्री

लै लै मोहन, चंदा लै।
 कमल-नैन! बलि जाऊँ सुचित है, नीचें नैकु चितै॥
 जा कारन तैं सुनि सुत सुंदर, कीन्हिं इती अरै।
 सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माहिं परै॥
 नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै।
 लै अपने कर काढ़ि चंद कौं, जो भावै सो कै॥
 गगन-मंडल तैं गहि आन्यौ है, पंछी एक पठै।
 सूरदास प्रभु इसी बात कौं कत मेरौ लाल हठै॥

व्याख्या: माता कहती है—लो! मोहन चन्द्रमा को लो! कमल लोचन! मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ, तनिक नीचे देखो तो। मेरे सुन्दर लाल! सुनो—जिसके लिए तुमने इतनी हठ की, वही चन्द्रमा बर्तन में पड़ा है, कन्हाई! इसे देखो। इसे उपाय करके आकाश में लाकर तुम्हारे पास पानी के बर्तन में संभालकर रख दिया है, अब तुम अपने हाथ से चन्द्रमा को निकाल लो और जो इच्छा हो, इसका करो। एक पक्षी को भेज कर इसे आकाश से पकड़ मँगाया है।' सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी से मैया कह रही है—'मेरे लाल! इतनी सी बात के लिए क्यों हठ कर रहे हो?'

राग बिहागरौ

तुव मुख देखि डरत ससि भारी।
 कर करि कै हरि हेर्यौ चाहत, भाजि पताल गयौ अपहारी॥
 वह ससि तौ कैसैहुँ नहिं आवत, यह ऐसी कुछ बुद्धि बिचारी।
 बदन देखि बिधु-बुधि सकात मन, नैन कंज कुंडल उजियारी॥
 सुनौ स्याम, तुम कौं सरि डरपत, यहै कहते मैं सरन तुम्हारी।
 सूर स्याम बिरुझाने सोए, लिए लगाइ छतिया महतारी॥

व्याख्या: माता कहती हैं—लाल तुम्हारा मुख देखकर चन्द्रमा अत्यन्त डर रहा है श्याम! तुम हाथ डालकर उसे ढूँढ़ना चाहते हो, इससे वह चोर की भाँति भागकर पाताल चला गया है। वह चन्द्रमा तो किसी भी प्रकार आता नहीं और यह जो जल में था, उसने बुद्धि से कुछ ऐसी बात सोच ली कि तुम्हारे मुख को देखकर इस चन्द्रमा की बुद्धि शंकित हो गयी। उसने अपने मन से तुम्हारे नेत्रों को कमल तथा कुण्डलों को प्रकाश समझा; इसलिए श्याम सुन्दर सुनो! चन्द्रमा तुमसे डर रहा है और यही कहता है कि मैं तुम्हारी शरण में हूँ। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर मचलते हुए ही सो गये। माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया।

राग कैदारौ

जसुमति लै पलिका पौढ़ावति।
 मेरौ आजु अतिहिं बिरुझानौ, यह कहि-कहि मधुरै सुर गावति॥
 पौढ़ि गई हरुएँ करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँभुआने।
 कर सौं ठोंकि सुतहि दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने॥
 पौढ़ौ लाल, कथा इक कहिहौं, अति मीठी, स्रवननि कौं प्यारी।
 यह सुनी सूर स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी श्याम सुन्दर को गोद में लेकर छोटे पलंग पर सुलाती हैं। मेरा लाल आज बहुत अधिक खीझ गया। यह कहकर मधुर स्वर से गान करती हैं। वे स्वयं भी धीरे से लेट गयी, तब श्याम सुन्दर ने शरीर को मोड़कर जम्हाई ली। माता हाथ से थपकी देकर

पुत्र को पुचकारने लगी, इतने में मोहन बड़ी आतुरता से हड़बड़ा कर उठ बैठे। तब माता ने कहा—‘लाल! लेट जाओ! मैं अत्यन्त मधुर और कानों को प्रिय लगने वाली एक कहानी सुनाऊँगी।’ सूरदास जी कहते हैं कि यह सुनकर श्याम सुन्दर मन में हर्षित हो उठे, लेट गये और हँसते हुए हुँकारी देने लगे।

राग ललित

नाहिनै जगाइ सकत, सुनि सुबात सजनी!
 अपनैँ जान अजहुँ कान्ह मानत हैं रजनी॥
 जब-जब हौं निकट जाति, रहति लागि लोभा।
 तन की गति बिसरि जाति, निरखत मुख-शोभा॥
 बचननि कौं बहुत करति, सोचति जिय ठाढ़ी।
 नैननि न बिचारि परत देखत रुचि बाढ़ी॥
 इहिं बिधि बदनारबिंद, जसुमति जिय भावै।
 सूरदास सुख की रासि, कापै कहि आवै॥

व्याख्या: माता यशोदा किसी गोपी से कहती हैं—‘सखी! मेरी यह सुन्दर बात सुनो! मैं मोहन को जगा नहीं पाती हूँ और मेरा यह कन्हाई अपनी समझ से अभी रात्रि ही मान रहा है। जब-जब मैं उसके पास जाती हूँ तब-तब मैं लोभ के वश ठिठककर रह जाती हूँ, उसके मुख की छटा देखते ही शरीर की दशा भी भूल जाती हूँ, खड़ी-खड़ी मन में विचार करती हूँ बोलने का बहुत प्रयत्न करती हूँ किन्तु नेत्रों को तो समझदारी आती नहीं सोते हुए श्याम की छबि देखते हुए उनकी रुचि बढ़ती ही जाती है।’ सूरदास जी कहते हैं कि मैया यशोदा को अपने लाल का कमल मुख इस प्रकार प्रिय लगता है, वह है ही आनन्दराशि, उसका वर्णन भला किससे हो सकता है।

राग बिलावल

जागिए, ब्रजराज-कुँवर, कमल-कुसुम फूले।
 कुमुद-बृंद सकुचित भए, भृंग लता भूले॥

तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई।
 राँभति गो खरिकनि मैं, बछरा हित छाई॥
 बिधु मलीन रबि-प्रकास गावत नर-नारी।
 सूर स्याम प्रात उठौ, अंबुज-कर-धारी॥

व्याख्या: ब्रज राजकुमार, जागो। देखो कमल पुष्प विकसित हो गये, कुमुदिनियों का समूह संकुचित हो गया, भौरै लताओं को भूल गये। मुर्गे और दूसरे पक्षियों का शब्द सुनो, जो वनराजि में बोल रहे हैं, गोष्ठों में गौएँ रँभाने लगी हैं और बछड़ों के लिए दौड़ रही हैं। चन्द्रमा मलिन हो गया, सूर्य का प्रकाश फैल गया, स्त्री-पुरुष गान कर रहे हैं। सूरदास जी कहते हैं कि कमल-समान हाथों वाले श्याम सुन्दर! प्रातःकाल हो गया अब उठो।

राग रामकली

खेलन चलौ बाल गोविंद!
 सखा प्रिय द्वारैं बुलावत, घोष-बालक-बृंद॥
 तृषित हैं सब दरस कारन, चतुर! चातक दास।
 बरषि छबि नव बारिधर तन, हरहु लोचन-प्यास॥
 बिनय-बचननि सुनि कृपानिधि, चले मनहर चाल।
 ललित लघु-लघु चरन-कर, उर-बाहु-नैन बिसाल॥
 अजिर पद-प्रतिबिंब राजत, चलत, उपमा-पुंज।
 प्रति चरन मनु हेम बसुधा, देहि आसन कंज॥
 सूर-प्रभु की निरखि सोभा रहे सुर अवलोकि।
 सरद-चंद चकोर मानौ, रहे शक्ति बिलोकि॥

व्याख्या: ब्रज के बालकों का समुदाय द्वार पर आ गया, वे सब प्रिय सखा बुलाने लगे—‘बालगोविन्द! खेलने चलो। हे चतुरशिरोमणि! हम सब तुम्हारे सेवक, तुम्हारे दर्शन के लिये चातकों के समान प्यासे हैं, अपने नवजलधर-शरीर की शोभा की वर्षा करके (वह शोभा दिखलाकर) हमारे नेत्रों की प्यास हर लो’ कृपानिधान श्याम वह विनीत

वाणी सुनकर मनोहर चाल से चल पड़े। उनके छोटे-छोटे चरण एवं हाथ बड़े सुन्दर हैं; वक्षस्थल, भुजाएँ तथा नेत्र बड़े-बड़े हैं। चलते समय उनके चरणों का प्रतिबिम्ब आँगन में इस प्रकार शोभा देता है कि उपमाओं का समुदाय ही जान पड़ता है। ऐसा लगता है मानो (आँगन की) यह स्वर्णमयी भूमि प्रत्येक चरण पर (चरणों के लिये) कमल का आसन दे रही है। सूरदास के स्वामी की शोभा देखकर देवता देखते ही रह गये, मानो शरद्-पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखते हुए चकोर थकित हो रहे हों।

राग ललित

प्रात भयौ, जागौ गोपाल।

नवल सुदरीं आई, बोलत तुमहि सबै ब्रजबाल॥

प्रगट्यौ भानु, मंद भयौ उड़पति, फूले तरुन तमाल।

दरसन कौं ठाढ़ी ब्रजवनि, गूँथि कुसुम बनमाल॥

मुखहि धोइ सुंदर बलिहारी, करहु कलेऊ लाल।

सूरदास प्रभु आनंद के निधि, अंबुज-नैन बिसाल॥

व्याख्या: माता कहती है—‘हे गोपाल! सवेरा हो गया, अब जागो। ब्रज सभी नवयुवती सुन्दरी गोपियाँ तुम्हें पुकारती हुई आ गयी हैं। सूर्योदय हो गया, चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो गया, तमाल के तरुण वृक्ष फूल उठे, ब्रज की गोपियाँ फूलों की वनमाला गूँथकर तुम्हारे दर्शन के लिए खड़ी हैं। मेरे लाल! अपने सुन्दर मुख को धोकर कलेऊ करो, मैं तुम पर बलिहारी हूँ।’ सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी कमल के समान विशाल लोचन वाले तथा आनन्द की निधि हैं। निद्रा में भी अद्भुत शोभा और आनन्द है।

जागौ, जागौ हो गोपाल।

नाहिन इतौ सोइयत सुनि सुत, प्रात परम सुचि काल॥

फिरि-फिरि जात निरखि मुख छिन-छिन, सब गोपनि के बाल।

बिन बिकसे कल कमल-कोष तैं मनु मधुपनि की माल॥

जो तुम मोहि न पत्याहु सूर-प्रभु, सुंदर स्याम तमाल।
तौ तुमहीं देखौ आपुन तजि निद्रा नैन बिसाल॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं कि माता मोहन को जगा रही है—जागो! जागो गोपाल लाल! प्यारे पुत्र! सुनो, सवेरे का समय बड़ा पवित्र होता है इतने समय तक सोया नहीं जाता। क्षण-क्षण में तुम्हारे मुख को देखकर सभी ग्वाल-बाल लौट-लौट जाते हैं ऐसा लगता है जैसे बिना खिले सुन्दर कमल-कोष से भौरों की पंक्ति लौट-लौट जाती है। तमाल के समान श्याम वर्ण वाले मेरे सुन्दर लाल! यदि तुम मेरा विश्वास न करते हो तो नींद छोड़कर अपने बड़े-बड़े नेत्रों से स्वयं तुम्हीं देख लो।'

राग भैरव

उठौ नंदलाल भयौ भिनुसार, जगावति नंद की रानी।
झारी कै जल बदन पखारौ, सुख करि सारंगपानी॥
माखन-रोटी अरु मधु-मेवा जो भावै लेउ आनी।
सूर स्याम मुख निरखि जसोदा, मन-हीं-मल जु सिहानी॥

व्याख्या: श्री नन्दरानी जगाती हुई कह रही हैं कि 'नन्दनन्दन! उठो, प्रातःकाल हो गया। हे शार्ङ्गपाणि मोहन! झारी के जल से आनन्दपूर्वक मुख धो लो। मक्खन, रोटी, मधु, मेवा आदि जो भी अच्छा लगे वह आकर लो।' सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर का मुख देखकर यशोदा जी मन-ही-मन फूल रही हैं।

राग बिलावल

तुम जागौ मेरे लाड़िले, गोकुल-सुखदाई।
कहति जननि आनंद सौं, उठौ कुँवर कन्हाई॥
तुम काँ माखन-दूध-दधि, मिस्त्री हाँ ल्याई।
उठि कै भोजन कीजिए, पकवान-मिठाई॥
सखा द्वार परभात सौं, सब टेर लगाई।
वन काँ चलिये साँवरे, दयौ तरनि दिखाई॥

सुनत बचन अति मोद सौं जागे जदुराई।
भोजन करि बन कौं चले, सूरज बलि जाई॥

व्याख्या: माता आनन्दपूर्वक कह रही है—मेरे लाड़िले, गोकुल को सुख देने वाले लाल, तुम जागो। कुँवर कन्हाई! उठो, तुम्हारे लिए मैं मक्खन, दूध, दही और मिश्री ले आयी हूँ। उठकर पकवान और मिठाइयों का भोजन करो। सवेरे से ही सब सखा द्वार पर खड़े पुकार रहे हैं कि श्याम सुन्दर! देखो, सूर्य दिखाई देने लगा, अब वन को चलो।' माता की यह बात सुनकर श्री यदुनाथ अत्यन्त आनन्द से जागे और भोजन करके वन को चल पड़े। सूरदास इन पर बलिहारी जाता है।

भोर भयौ जागौ नँद-नंद।
तात निसि बिगत भई, चकई आनंदमई,
तरनि की किरन तैं चंद भयौ नंद॥
तमचूर खग रोर, अलि करैं बहु सोर,
बेगि मोचन करहु, सुरभि-गल-फंद।
उठहु भोजन करहु, खोरी उतारि धरहु,
जननि प्रति देहु सिसु रूप निज कंद॥
तीय दधि-मथन करैं, मधुर धुनि श्रवन परैं,
कृष्ण जस बिमल गुनि करति आनंद।
सुरप्रभु हरि-नाम उधारत जग-जननि,
गननि कौं देखि कै छकित भयौ छंद॥

व्याख्या: माता कहती है— सवेरा हो गया, नन्दनन्दन! जागो। लाल! रात बीत गयी। चक्रवाकी को आनन्द हो रहा है, सूर्य की किरणों से चन्द्रमा तेजोहीन हो गया। मुर्गे तथा अन्य पक्षी कोलाहल कर रहे हैं, भौरें खूब गुंजार करने लगे हैं, अब तुम झटपट गायों के गले की रस्सियाँ खोल दो। उठो, भोजन करो, चन्दन की खौर उतार दो, मैया को अपने आनन्दकन्द शिशु-मुख को दिखलाओ। गोपियाँ छवि-मन्थन करने लगी हैं, उसकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ रही है, कृष्णचन्द्र! वे तुम्हारे निर्मल

यश का स्मरण करके आनन्द मचा रही हैं। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी का नाम ही संसार के लोगों का उद्धार कर देता है उनके गुणों को देखकर तो वो भी चकरा जाते हैं, वे भी उनके गुणों का वर्णन नहीं कर पाते हैं।

जागिये गुपाल लाल! ग्वाल द्वार ठाढ़े।
 रैन-अंधकार गयौं, चंद्रमा मलीन भयौ,
 तारागन देखियत नहिं तरनि-किरनि बाढ़ै॥
 मुकुलित भये कमल-जाल, गुंज करत भृंग-माल,
 प्रफुलित बन पुहुप डाल, कुमुदिनि कुंभिलानी।
 गंधबगन गान करत, स्नान दान नेम धरत,
 हरत सकल पाप, बदत बिप्र बेद-बानी॥
 बोलत, नंद बार-बार देखैं मुख तुव कुमार,
 गाइनि भइ बड़ी बार बृंदावन जैबें।
 जननि कहति उठौ स्याम, जानत जिय रजनि ताम,
 सूरदास प्रभु कृपाल, तुम कौं कछु खैबैं॥

व्याख्या: गोपाल लाल! जागो, द्वार पर सब गोप खड़े हैं, रात्रिका अन्धकार दूर हो गया, चन्द्रमा मलिन पड़ गया, अब तारे नहीं दीख पड़ते, सूर्य की किरणें फैल रही हैं, कमलों के समूह खिल गये, भ्रमरों का झुंड गुंजार कर रहा है, वन में पुष्प डालियों पर खिल उठे, कुमुदिनी संकुचित हो गयी, गन्धर्व गण-गान कर रहे हैं। इस समय स्नान-दान तथा नियमों का पालन करके अपने सारे पाप दूर करते हुए विप्रगण वेदपाठ कर रहे हैं। श्री नन्द जी बार-बार पुकारते हैं—‘कुमार! उठो, तुम्हारा मुख तो देखें, गायों को चरने जाने में बहुत देर हो गयी।’ माता कहती है—‘श्याम सुन्दर उठो! अभी तुम मन में रात्रि का अन्धकार ही समझ रहे हो?’ सूरदास जी कहते हैं—मेरे कृपालु स्वामी! आपको कुछ भोजन भी तो करना है।

राग सोरठ

सो सुख नंद भाग्य तैं पायौ।
 जो सुख ब्रह्मादिक कौं नाहीं, सोई जसुमति गोद खिलायौ॥
 सोइ सुख सुरभि-बच्छ वृंदावन, सोइ सुख ग्वालनि टेरि बुलायौ।
 सोइ सुख जमुना-कूल-कदंब चढ़ि, कोप कियौ काली गाहि ल्यायौ॥
 सुख-ही-सुख डोलत कुंजनि मैं, सब सुख निधि बन तैं ब्रज आयौ।
 सूरदास-प्रभु सुख-सागर अति, सोइ सुख सेस सहस मुख गायौ॥

व्याख्या: सौभाग्य से श्री नन्द जी ने उस आनन्द घन को प्राप्त कर लिया है, जो आनन्दस्वरूप ब्रह्मादिकों को भी प्राप्त नहीं होता; किन्तु उसी को मैया यशोदा गोद में लेकर खेलाती हैं। वहीं सुख स्वरूप गायों और बछड़ों के साथ वृन्दावन में जाता है, वही सुख निधि गोप कुमारों को पुकार कर बुलाता है, वही आनन्द घन यमुना किनारे कदम्ब पर चढ़ा और क्रोध करके कालिम नाग को पकड़ लाया। वह तो आनन्द-ही-आनन्द उँड़ेलता कुंजों में घूमता है, समस्त सुखों की राशि वह वन से ब्रज में आया। सूरदास जी का वह स्वामी तो सुखों का महान समुद्र है, शेष जी सपने सहस्र मुखों से उस सुखस्वरूप का ही गुणगान करते हैं।

राग जैतश्री

दूरि खेलन जनि जाहु लला मेरे, बन मैं आए हाऊ!
 तब हँसि बोले कान्हर, मैया, कौन पठाए हाऊ?
 अब डरपत सुनि-मुनि ये बातैं, कहत हँसत बलदाऊ।
 सप्त रसातल सेषासन रहे, तब की सुरति भुलाऊ॥
 चारि बेद ले गयौ संखासुर, जल मैं रह्यौ लुकाऊ।
 मीन-रूप धरि कै जब मार्यौ, तबहि रहे कहँ हाऊ?
 मथि समुद्र सुर-असुरनि कै हित, मंदर जलधि धसाऊ।
 कमठ-रूप धरि धर्यौ पीठि पर, तहाँ न देखे हाऊ!

जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ।
 धरि बाराह-रूप सो मार्यौ, लै छिति दंत अगाऊ॥
 बिकट-रूप अवतार धर्यौ जब, सो प्रह्लाद बचाऊ।
 हिरनकसिप बपु नखनि बिदार्यौ, तहाँ न देखे हाऊ।
 बामन-रूप धर्यौ बलि छलि कै, तीनि परग बसुधाऊ।
 स्रम जल ब्रह्म-कमंडल राख्यौ, दरसि चरन परसाऊ॥
 मार्यौ मुनि बिनहीं अपराधहि, कामधेनु लै हाऊ।
 इकड़स बार निछत्र करी छिति, तहाँ न देखे हाऊ।
 राम-रूप रावन जब मार्यौ, दस-सिर बीस-भुजाऊ।
 लंक जराइ छार जब कीनी, तहाँ न देखे हाऊ।
 भक्त हेत अवतार धरे, सब असुरनि मारि बहाऊ।
 सूरदास प्रभु की यह लीला, निगम नेति नित गाऊ॥

व्याख्या: (माता ने कहा) 'मेरे लाल! दूर खेलने मत जाओ, वन में होए आये हैं।' तब कन्हाई हँसकर बोले—'मैया! किसने हौओं को भेजा है?' श्री बलराम जी (छोटे भाई की) ये बातें सुनकर हँसते हैं और (मन-ही-मन) कहते हैं—'अब आप डरने लगे हैं, किंतु पृथ्वी के नीचे के सातवें लोक पाताल में शेष की शय्या पर विराजते हैं, उस समय की सुधि भूल गये (प्रलय के समय) जब शङ्खासुर (ब्रह्मा जी से) चारों वेद ले गया और प्रलय के जल में छिप गया, उस समय जब आपने मत्स्यावतार लेकर उसे मारा, तब होए कहाँ थे। देवता और दैत्यों के लिए आपने समुद्र-मन्थन किया और समुद्र में डूबते मन्दराचल को कच्छप रूप धारण करके पीठ पर लिये रहे, वहाँ भी होए नहीं दिखलायी पड़े थे। जब दैत्य हिरणाक्ष अपने मन में अत्यन्त गर्वित होकर युद्ध की अभिलाषा करने लगा, तब आपने उसे वाराहरूप धारण करके मारा और पृथ्वी को दाँतों के अगले भाग पर उठा लिया। जब आपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए भयंकर नृसिंह रूप में अवतार लिया और हिरण्यकशिपु का शरीर नखों से फाड़ डाला, वहाँ भी तो होए नहीं दीखे थे। वामनावतार धारण करके आपने बलि से छल किया और पूरी पृथ्वी तीन ही पग में नाप ली; उस समय ब्रह्मा जी ने आपके

चरणों का दर्शन करके उन चरणों को धोकर चरणों के पसीने से मिला चरणोदक अपने कमण्डलु में रख लिया। जब (सहस्रार्जुन ने) बिना अपराध ही मुनि जमदग्नि को मार दिया, क्योंकि उसके द्वारा हरण की गयी कामधेनु आप लौटा आये थे; तब आपने (उस परशुरामावतार में) इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया; वहाँ भी होए तो नहीं दीखे थे! जब आपने रामावतार लेकर दस मस्तक और बीस भुजा वाले रावण को मारा और जब लंका को जलाकर भस्म कर दिया, तब भी वहाँ होए नहीं दीख पड़े थे। भक्तों की रक्षा के लिए और असुरों को मारकर नष्ट कर देने के लिए आपने यह अवतार लिया है, (अब यहाँ पर भय का नाटक क्यों करते हैं?) सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी की यह लीला है, जिसका वेद भी नित्यप्रति 'नेति-नेति' कहकर (पार नहीं, पार नहीं-इस प्रकार) वर्णन करते हैं।

राग बिहागरौ

बल-मोहन दोउ करत बियारी।

प्रेम सहित दोउ सुतनि जिंवावति, रोहिनि अरु जसुमति महतारी॥

दोउ भैया मिलि खात एक सँग, रतन-जटित कंचन की थारी।

आलस सौं कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी॥

दोउ माता निरखत आलस मुख-छबि पर तन-मन डारतिं बारी।

बार-बार जमुहात सूर-प्रभु, इहि उपमा कबि कहै कहा री॥

व्याख्या: बलराम और श्याम सुन्दर दोनों भाई ब्यालू कर रहे हैं। माता रोहिणी और मैया यशोदा प्रेमपूर्वक दोनों पुत्र को भोजन करा रही हैं। रत्नजटित सोने के थाल में दोनों भाई एक साथ बैठकर भोजन कर रहे हैं। दोनों आलस्यपूर्वक हाथों से ग्रास उठाते हैं, नेत्रों में अत्यन्त गाढ़ी निद्रा छा गयी है। दोनों माताएँ पुत्रों के अलसाये मुख की शोभा देख रही हैं और उस पर अपना तन-मन न्योछावर किये देती हैं। सूरदास के स्वामी बार-बार जम्हाई ले रहे हैं; भला, कोई कवि इस छटा की उपमा किसके साथ देगा।

राग केदारौ

कीजै पान लला रे यह लै आई दूध जसोदा मैया।
 कनक-कटोरा भरि लीजै, यह पय पीजै, अति सुखद कहैया॥
 आछैं औट्यौ मेलि मिठाई, रुचि करि अँचवत क्यों न नहैया।
 बहु जतननि ब्रजराज लड़ैते, तुम कारन राख्यौ बल भैया॥
 फूँकि-फूँकि जननी पय प्यावति, सुख पावति जो उर न समैया।
 सूरज स्याम-राम पय पीवत, दोऊ जननी लेतिं बलैया॥

व्याख्या: मैया यशोदा दूध ले आयीं (और बोलीं—) 'लाल! यह सोने का दूध भरा कटोरा लेकर दूध पियो। कन्हाई! यह अत्यन्त सुखदायी दूध पी लो। इसमें मीठा डालकर इसे भली प्रकार मैंने औटाया (गरम करके गाढ़ा किया) है, मेरे नन्हें लाल! रुचिपूर्वक इसे क्यों नहीं पीते हो? ब्रजराज के लाड़ले लाल! तुम्हारे साथ दूध पीने के लिए बड़े यत्न से तुम्हारे दाऊ भैया को मैंने रोक रखा है।' माता फूँक-फूँककर (शीतल करके) दूध पिला रही हैं और ऐसा करने में इतना आनन्द पा रही हैं, जो हृदय में समाता नहीं। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर और बलराम जी दूध पी रहे हैं। दोनों माताएँ बलैया लेती हैं (जिसमें उन्हें नजर न लग जाय)।

बल-मोहन दोऊ अलसाने।

कछु-कछु खाइ दूध अँचयौ, तब जम्हात जननी जाने॥
 उठहु लाल! कहि मुख पखरायौ, तुम कौं लै पौढ़ाऊँ।
 तुम सोवो मैं तुम्हें सुवाऊँ, कछु मधुरैं सुर गाऊँ॥
 तुरत जाइ पौढ़े दोउ भैया, सोवत आई निंद।
 सूरदास जसुमति सुख पावति पौढ़े बालगोबिंद॥

व्याख्या: बलराम और श्याम सुन्दर दोनों अलसा गये (आलस्यपूर्ण हो गये) हैं। थोड़ा-थोड़ा भोजन करके उन्होंने दूध पी लिया, तब माता ने देखा कि उन्हें जम्हाई आ रही है (अतः इन्हें अब सुला देना चाहिए)। 'लाल उठो!' यह कहकर उनका मुख धुलाया; फिर कहा—'आओ, तुम्हें

(पलंगपर) लिटा दूँ; तुम सोओ, मैं कुछ मधुर स्वर से गाकर तुम्हें सुलाऊँ।' दोनो भाई तुरंत ही जाकर लेट गये, लेटते ही उन्हें निद्रा आ गयी। सूरदास जी कहते हैं कि बाल गोविन्द को सोते देख माता यशोदा आनन्दित हो रही हैं।

राग सूहौ

माखन बाल गोपालहि भावै।

भूखे छिन न रहत मन मोहन, ताहि बदाँ जो गहरु लगावै॥

आनि मथानी दह्यौ बिलोवाँ, जौ लगि लालन उठन न पावै।

जागत ही उठि रारि करत है, नहिं मानै जौ इंद्र मनावै॥

हौं यह जानति बानि स्याम की, अँखियाँ मीचे बदन चलावै।

नंद-सुवन की लगौं बलैया, यह जूठनि कछु सूरज पावै॥

व्याख्या: (माता कहती हैं—) 'मेरे बाल गोपाल को मक्खन रुचिकर है। मनमोहन एक क्षण भी भूखे नहीं रह सकता; इसमें जो देर लगा सके, उससे मैं होड़ बंद सकती हूँ। मथानी लाकर मैं तब तक दही मथ लूँ जब तक कि मेरा लाल जाग न जाय; (क्योंकि) उठते ही वह (मक्खन के लिए) मचल जाता है और फिर इंद्र भी आकर मनावें तो मान नहीं सकता। मैं श्याम का यह स्वभाव जानती हूँ कि वह (आधी नींद में भी उठकर मक्खन लेकर) नेत्र बंद किये हुए मुँह चलाता रहता है।' सूरदास जी कहते हैं कि मैं श्री नन्दनन्दन के ऊपर बलिहारी जाता हूँ, उनका यह उच्छिष्ट कुछ मुझे भी मिल जाय।

राग बिलावल

भोर भयौ मेरे लाड़िले, जागौ कुँवर कन्हाई।

सखा द्वार ठाढ़े सबै, खेलौ जदुराई॥

मोकौं मुख दिखराइ कै, त्रय-ताप नसावहु।

तुव मुख-चंद चकोर-दृग मधु-पान करावहु॥

तब हरि मुख-पट दूरि कै, भक्तनि सुखकारी।

हँसत उठे प्रभु सेज तैं, सूरज बलिहारी॥

व्याख्या: (मैया ने कहा—) 'मेरे दुलारे लाल! सवेरा हो गया, कुँवर कन्हाई जागो। हे यदुनाथ! तुम्हारे सब सखा द्वार पर खड़े हैं, (उनके साथ) खेलो। मुझे अपना मुख दिखलाकर तीनों ताप दूर करो। मेरे नेत्र तुम्हारे मुख रूपी चन्द्रमा के चकोर हैं, इन्हें (अपनी) रूप माधुरी का पान कराओ।' तब भक्तों के हितकारी प्रभु श्याम सुन्दर अपने मुख पर से वस्त्र हटाकर हँसते हुए पलंग पर से उठे। सूरदास अपने इन स्वामी पर बलिहारी हैं।

भोर भयौ जागो नंदनंदन।

संग सखा ठाढ़े जग-बंदन॥

सुरभी पय हित बच्छ पियावैं।

पंछी तरु तजि दहुँ दिसि धावैं॥

अरुन गगन तमचुरनि पुकार्यौ।

सिथिल धनुष रति-पति गहि डार्यौ॥

निसि निघटी रबि-रथ रुचि साजी।

चंद मलिन चकई रति-राजी॥

कुमुदिनि सकुची बारिज फूले।

गुंजत फिरत अली-गन झूले॥

दरसन देहु मुदित नर-नारी।

सूरज-प्रभु दिन देव मुरारी॥

व्याख्या: नन्द नन्दन! सवेरा हो गया, अब जागो। हे विश्व के वन्दनीय! तुम्हारे सब सखा द्वार पर खड़े हैं। गायें प्रेम से बछड़ों को दूध पिला रही हैं, पक्षी पेड़ों को छोड़कर दसों दिशाओं में उड़ने लगे हैं। आकाश में अरुणोदय देखकर मुर्गे बोल रहे हैं। कामदेव ने हाथ में लिया धनुष डोरी उतारकर रख दिया है। रात्रि व्यतीत हो गयी, भली प्रकार सजा सूर्य का रथ प्रकट हो गया। चन्द्रमा मलिन पड़ गया और चक्रवाकी अपने जोड़े से मिलकर प्रसन्न हो गयी। कुमुदिनियाँ कुम्हिला गयीं। कमल फूल उठे, उन पर मँडराते भौरे गुंजार कर रहे हैं। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे सदा के आराध्य देव श्रीमुरारि! अब दर्शन दो, जिससे (ब्रज के) स्त्री-पुरुष आनन्दित हों।

राग सारंग

नहात नंद सुधि करी स्याम की, ल्यावहु बोलि कान्ह-बलराम।
 खेलत बड़ी बार कहूँ लाई, ब्रज भीतर काहुँ कै धाम॥
 मेरैं संग आइ देउ बैठैं, उन बिनु भोजन कौने काम।
 जसुमति सुनत चली अति आतुर, ब्रज-घर-घर टेरति लै नाम॥
 आजु अबेर भई कहूँ खेलत, बोलि लेहु हरि कौं कोउ बाम।
 ढूँढ़ति फिरि नहिं पावति हरि कौं, अति अकुलानी, तावति घाम॥
 बार-बार पछिताति जसोदा, बासर बीति गए जुग जाम।
 सूर स्याम कौं कहूँ न पावति, देखे बहु बालक के ठाम॥

व्याख्या: स्नान करते समय श्री नन्द जी ने श्याम सुन्दर का स्मरण किया और कहा कि 'श्याम और बलराम को बुला लाओ। ब्रज के भीतर किसी के घर पर कहीं खेलते हुए दोनों बड़ी देर लगा दी। दोनों मेरे साथ आकर बैठें, उनके बिना भला भोजन किस काम का।' यह सुनते ही श्री यशोदा जी आतुरतापूर्वक चल पड़ीं। वे ब्रज में घर-घर (पुत्रों का) नाम ले-लेकर उन्हें पुकार रही हैं। (गोपियों से बोली-) 'उन्हें कहीं खेलते समय श्याम सुन्दर को बहुत देर हो गयी, कोई सखी उन्हें बुला तो लाओ।' ढूँढ़ते हुए घूमती रहीं, किंतु मोहन को पा नहीं रही हैं। बहुत व्याकुल हो गयी हैं और धूप से संतप्त हो उठी हैं। श्री यशोदा जी बार-बार पश्चात्ताप कर रही हैं कि 'दिन के दो पहर बीत गये (मेरे पुत्र अब भी भूखे हैं)।' सूरदास जी कहते हैं कि उन्होंने बालकों के (खेलने के) बहुत-से स्थान देख लिये, किंतु कहीं श्याम सुन्दर को पा नहीं रही हैं।

कोउ माई बोलि लेहु गोपालहि।

मैं अपने कौ पंथ निहारति, खेलत बेर भई नंदलालहि॥

टेरत बड़ी बार भइ मोकौं, नहिं पावति घनस्याम तमालहि।

सिध जेवन सिरात नंद बैठे, ल्यावहु बोलि कान्ह ततकालहि॥

भोजन करै नंद संग मिलि के, भूख लगी हैहै मेरे बालहि।

सूर स्याम-मग जोवति जननी, आइ गए सुनि बचन रसालहि॥

व्याख्या: (मैया यशोदा कहती हैं—) 'कोई सखी गोपाल को बुला तो लो! मैं अपने लाल का मार्ग जोहती हूँ, उस नन्द नन्दन को खेलते हुए देर हो गयी। मुझे पुकारते बहुत देर हो गयी; किन्तु तमाल के समान श्याम उस घनश्याम को पा नहीं रही हूँ, बना हुआ भोजन ठंडा हुआ जाता है। ब्रजराज बैठे (प्रतीक्षा कर) रहे हैं, इसलिए कन्हाई तुरंत बुला लाओ। मेरे बालक को भूख लगी होगी, वह बाबा नन्द जी के साथ बैठकर भोजन कर ले।' सूरदास जी कहते हैं कि माता इस प्रकार मार्ग देख ही रही थीं कि उनकी रसमयी (प्रेमभरी) बात सुनकर श्याम सुन्दर स्वयं आ गये।

राग नटनारायन

हरि कौं टेरति है नंदरानी।
 बहुत अबार भई कहँ खेलत, रहे मेरे सारंग-पानी?
 सुनतहिं टेर, दौरि तहँ आएँ, कब के निकसे लाल।
 जेवत नहीं नंद तुम्हरे बिनु, बेगि चलौ, गोपाल॥
 स्यामहि ल्याई महरि जसोदा, तुरतहिं पाइँ पखारे।
 सूरदास प्रभु संग नंद कै बैठे हैं दोउ बारे॥

व्याख्या: श्री नन्द रानी हरि को पुकार रही हैं—'मेरे शार्ङ्गपाणि! बहुत देर हो गयी, तुम अब तक कहाँ खेलते थे? लाल! तुम कब से घर से निकले हो, तुम्हारे बिना बाबा नन्द भोजन नहीं कर रहे हैं। गोपाल! अब झटपट चलो।' माता की पुकार सुनकर श्याम दौड़कर वहाँ आ गये। ब्रजरानी यशोदा जी ने मोहन को घर ले आकर तुरंत ही उनके चरण धोये। सूरदास के स्वामी ब्रजराज के दोनों बालक ब्रजराज श्री नन्दजी के साथ (भोजन करने) बैठे हैं।

राग कान्हरी

बोलि लेहु हलधर भैया कौं।
 मेरे आगैं खेल करौ कछु, सुख दीजै मैया कौं॥

मैं मुँदों हरि! आँखि तुम्हारी, बालक रहैं लुकाई।
 हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलन आँखि-मुँदाई॥
 हलधर कह्यौ आँखि को मुँदे, हरि कह्यौ मातु जसोदा।
 सूर स्याम लए जननि खिलावति, हरष सहित मन मोदा॥

व्याख्या: (माता ने मोहन से कहा—) 'लाल! अपने बड़े भाई बलराम को बुला लो। मेरे सामने ही कोई खेल खेलो और अपनी मैया को भी आनन्द दो। श्यामसुन्दर! मैं तुम्हारे नेत्र बंद करूँ, (दूसरे सब) बालक छिप जायें।' इससे प्रसन्न होकर आँखमिचौनी खेलने के लिए श्याम सुन्दर ने सब सखाओं को बुलाया। बलराम जी ने पूछा—'आँख बंद कौन करेगा?' श्याम सुन्दर बोले—'मैया यशोदा (मेरे) नेत्र बंद करेंगी।' सूरदास जी कहते हैं, प्रसन्नता के साथ श्यामसुन्दर को साथ लेकर माता खेला रही हैं। उनका चित्त आनन्दित हो रहा है।

राग गौरी

हरि तब अपनी आँखि मुँदाई।
 सखा सहित बलराम छपाने, जहँ-तहँ गए भगाई॥
 कान लागि कह्यौ जननि जसोदा, वा घर मैं बलराम।
 बलदाऊ कौं आवत दैहौं, श्री दामा सौं काम॥
 दौरि-दौरि बालक सब आवत, छुवत महरि कौ गात।
 सब आए रहे सुबल श्रीदामा, हारे अब कै तात॥
 सोर पारि हरि सुबलहि धाए, गह्यौ श्रीदामा जाइ।
 दै-दै सौहैं नंद बबा की, जननी पै लै आइ॥
 हँसि-हँसि तारी देत सखा सब, भए श्रीदामा चोर।
 सूरदास हँसि कहति जसोदा, जीत्यौ है सुत मोर॥

व्याख्या: तब (खेल के प्रारम्भ में) श्याम ने अपने नेत्र बंद करवाये। सखाओं के साथ बलराम जी इधर-उधर भागकर छिप गये। मैया यशोदा ने (श्याम के) कानों से लगकर कहा—'बलराम उस घर में हैं।' (मोहन बोले—) 'दाऊ दादा को आने दूँगा, मुझे तो श्रीदामा

से काम है (उसे छूकर चोर बनाना है) सभी बालक दौड़-दौड़कर आते हैं और ब्रजरानी शरीर छूते हैं, सब आ गये। केवल सुबल और श्रीदामा रह गये। (तब मैया ने कहा—) लाल! अब की बार तो तुम हारते दीखते हो।' ललकारकर श्याम सुन्दर (धोखा देने के लिये) सुबल की ओर दौड़े; किंतु जाकर श्रीदामा को पकड़ लिया, फिर बार-बार नन्द बाबा की शपथ दिलाकर उसे माता के पास ले आये। सब सखा हँसते हुए बार-बार ताली बजाने लगे—'श्रीदामा चोर हो गये।' सूरदास जी कहते हैं कि श्री यशोदा जी हँसकर कहने लगीं—'मेरा पुत्र विजयी हुआ है।'

राग केदारौ

पौढ़िए मैं रचि सेज बिछाई।

अति उज्ज्वल है सेज तुम्हारी, सोवत मैं सुखदाई॥

खेलत तुम निसि अधिक गई, सुत, नैननि नींद झँपाई।

बदन जँभात अंग ऐंडावत, जननि पलोटति पाई॥

मधुरैं सुर गावत केदारौ, सुनत स्याम चित लाई।

सूरदास प्रभु नंद-सुवन कौ नींद गई तब आई॥

व्याख्या: (रात्रि हो जाने पर माता कहती हैं—) 'लाल! मैंने खूब सजाकर तुम्हारी पलंग बिछा दी है, अब तुम लेट जाओ। तुम्हारी पलंग अत्यन्त उज्ज्वल है और सोने में सुखदायक है। तुम्हें खेलते हुए अधिक रात्रि बीत गयी। लाल! अब तुम्हारे नेत्र निद्रा से झपक रहे हैं।' श्याम सुन्दर मुख से जम्हाई लेते हैं, शरीर से अँगड़ाई लेते हैं। माता उनके पैर दबा रही हैं तथा मधुर स्वर में केदारा राग गा रही हैं, श्याम सुन्दर चित्त लगाकर सुन रहे हैं। सूरदास जी कहते हैं कि तब नन्दनन्दन को निद्रा आ गयी।

राग सारंग

खेलन जाहु बाल सब टेरेत।

यह सुनि कान्ह भए अति आतुर, द्वारैं तन फिरि हेरेत॥

बार-बार हरि मातहि बूझत, कहि चौगान कहाँ है।
 दधि-मथनी के पाछें देखौ, लै मैं धर्यौ तहाँ है॥
 ले चौगान-बटा अपनै कर, प्रभु आए घर बाहर।
 सूर स्याम पूछत सब ग्वालनि, खेलौगे किहिं ठाहर॥

व्याख्या: (माता ने कहा—) 'लाल! खेलने जाओ, सब बालक तुम्हें पुकार रहे हैं।' यह सुनकर कन्हाई अत्यन्त आतुर हो उठे। बार-बार द्वार की ओर देखने लगे। बार-बार मोहन मैया से पूछने लगे—'मेरा गेंद, खेलने का बल्ला कहाँ है?' (माता ने कहा—) 'दही के मटके के पीछे देखो, मैंने लेकर वहाँ रख दिया है।' अपने हाथ में बल्ला और गेंद लेकर मोहन घर से बाहर आये। सूरदास जी कहते हैं—श्याम सुन्दर सब ग्वाल-बालकों से पूछ रहे हैं—'किस स्थान पर खेलोगे?'

खेलत बनै घोष निकास।

सुनहु स्याम, चतुर-सिरोमनि, इहाँ है घर पास॥
 कान्ह-हलधर बीर दोऊ, भुजा-बल अति जोर।
 सुबल, श्रीदामा, सुदामा, वै भए, इक ओर॥
 और सखा बँटाइ लीन्हे, गोप-बालक-बुंद।
 चले ब्रज की खोरि खेलत, अति उमँगि नंद-नंद॥
 बटा धरनी डारि दीनौ, लै चले ढरकाइ।
 आपु अपनी घात निरखत खेल जग्यौ बनाइ॥
 सखा जीतत स्याम जाने, तब करी कछु पेल।
 सूरदास कहत सुदामा, कौन ऐसौ खेल॥

व्याख्या: (सखाओं ने कहा—) 'चतुर शिरोमणि श्याम सुन्दर! सुनो। यहाँ तो घर पास है, ग्राम के बाहर मैदान में खेलने बनेगा। (खेलने की स्वच्छन्दता रहेगी)।' कन्हाई और श्रीबलराम—ये दोनों भाई जिनकी भुजाएँ बलवान् थीं और जो स्वयं भी अत्यन्त शक्तिमान् थे, एक दल के प्रमुख हो गये। सुबल, श्रीदामा और सुदामा दूसरी ओर हो गये। गोप बालकों के समूह के दूसरे सखाओं का भी बँटवारा करा लिया।

श्री नन्दनन्दन बड़ी उमंग में भरकर ब्रज की गलियों में खेलते हुए (ग्राम के बाहर) चल पड़े। (बाहर जाकर) गेंद पृथ्वी पर डाल दिया और उसे लुढ़काते हुए ले चले। सब अपना-अपना अवसर देखते थे, खेल भली प्रकार जम गया। श्याम सुन्दर ने देखा कि सखा जीत रहे हैं, तब कुछ मनमानी करने लगे। सूरदास जी कहते हैं कि (उनकी मनमानी देखकर) सुदामा ने कहा इस प्रकार (बेईमानी का) खेल कौन खेले।

राग कान्हरी

आवहु, कान्ह, साँझ की बेरिया।

गाड़नि माँझ भए हौ ठाढ़े, कहति जननि, यह बड़ी कुबेरिया॥

लरिकाई कहूँ नैकु न छाँड़त, सोइ रहौ सुथरी सेजरिया।

आए हरि यह बात सुनतहीं, धाड़ि लए जसुमति महतरिया॥

ले पौढ़ी आँगनहीं सु कौं, छिटकि रही आछी उजियरिया।

सूर स्याम कछु कहत-कहत ही बस करि लीन्हे आइ निंदरिया॥

व्याख्या: माता कहती हैं—‘कन्हाई! सायंकाल हो गया, अब आ जाओ। यह बहुत कुसमय में तुम गायों के बीच में खड़े हो। (इस समय गायें बछड़ों को पिलाने के लिए उछल-कूद करती हैं, कहीं चोट न लग जाय) तुम तनिक भी लड़कपन नहीं छोड़ते, अब तो स्वच्छ पलंग पर सो रहो।’ यह बात सुनते ही श्याम सुन्दर आ गये। माता यशोदाजी ने दौड़कर उन्हें गोद में उठा लिया। अच्छी चाँदनी फैल रही थी, अपने पुत्र को लेकर (माता) आँगन ही (पलंग पर) लेट गयीं! सूरदासजी कहते हैं कि श्याम सुन्दर कुछ बातें करते ही थे कि निद्रा ने आकर उन्हें वश में कर लिया। (बातें करते-करते वे सो गये।)

आँगन में हरि सोई गए री।

दोउ जननी मिलि कै हरुएँ करि सेज सहित तब भवन लए री॥

नैकु नहीं घर मैं बैठत हैं, खेलहि के अब रंग गए री।

इहिं बिधि स्याम कबहुँ नहिं सोए बहुत नींद के बसहिं भए री॥

कहति रोहिनी सोवन देहु न, खेलत दौरत हारि गए री।

सूरदास प्रभु कौ मुख निरखत हरखत जिय नित नेह नए री॥

व्याख्या: 'सखी! श्याम आँगन में सो गये। दोनों माताओं (श्री रोहिणीजी और यशोदा जी) ने मिलकर धीरे से (सँभालकर) पलंग सहित उठाकर उन्हें घर के भीतर कर लिया।' (माता कहने लगीं—) 'अब मोहन तनिक भी घर में नहीं बैठते; खेलने के ही रंग में रँगे रहते (खेलने की ही धुन में रहते) हैं। श्याम सुन्दर इस प्रकार कभी नहीं सोये। (आज तो) सखी! निद्रा के बहुत अधिक वश में हो गये (बड़ी गाढ़ी नींद में सो गये) हैं।' (यह सुनकर) माता रोहिणी कहने लगीं—'खेलने में दौड़ते-दौड़ते थक गये हैं, अब इन्हें सोने दो न।' सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी के मुख का दर्शन करने से प्राण हर्षित होते हैं और नित्य नवीन अनुराग होता रहता है।

राग धनाश्री

महराने तैं पाँड़े आयौ।

ब्रज घर-घर बूझत नँद-राउर पुत्र भयौ, सुनि कै, उठि धायौ॥
 पहुँच्यौ आइ नंद के द्वारैं, जसुमति देखि अनंद बढ़ायौ।
 पाँइ धोइ भीतर बैठास्यौ, भोजन कौं निज भवन लिपायौ॥
 जो भावै सो भोजन कीजै, बिप्र मनहिं अति हर्ष बढ़ायौ।
 बड़ी बैस बिधि भयौ दाहिनौ, धनि जसुमति ऐसौ सुत जायौ॥
 धेनु दुहाइ, दूध लै आई, पाँड़े रुचि करि खीर चढ़ायौ।
 घृत मिष्टान्न, खीर मिश्रित करि, परुसि कृष्ण हित ध्यान लगायौ॥
 नैन उधारि बिप्र जौ देखै, खात कन्हैया देखन पायौ।
 देखौ आइ जसोदा! सुत-कृति, सिद्ध पाक इहिं आइ जुठायौ॥
 महरि बिनय करि दुहुकर जो रे, घृत-मधु-पय फिरि बहुत मँगायौ।
 सूर स्याम कत करत अचगरी, बार-बार बाह्नहि खिझायौ॥

व्याख्या: श्री यशोदा जी के मायके से एक ब्राह्मण (गोकुल) आये। ब्रज के घर-घर वे नन्दराय जी के महल का पता पूछ रहे थे और सुनकर कि उनके पुत्र हुआ है वे दौड़े आये थे। (शीघ्र ही) वे श्रीनन्दजी के द्वार पर आ पहुँचे। उन्हें देखकर माता यशोदा को बड़ा आनन्द हुआ। उनके चरण धोकर घर के भीतर उन्हें बैठाया और उनके भोजन के

लिए अपना निजी कमरा लिपवा दिया। फिर बोलीं—‘आपकी जो इच्छा हो, वह भोजन बना लें। यह सुनकर विप्र का मन अत्यन्त हर्षित हुआ। वे बोले—‘बहुत अवस्था बीत जाने पर विधाता अनुकूल हुए; यशोदा जी! तुम धन्य हो जो ऐसा (सुन्दर) पुत्र तुमने उत्पन्न किया।’ (यशोदा जी) गाय दुहवाकर दूध ले आयीं, ब्राह्मण ने बड़ी प्रसन्नता से खीर बनायी। घी, मिश्री मिलाकर खीर परोसकर भगवान् कृष्ण को भोग लगाने के लिए ध्यान करने लगे। फिर जब नेत्र खोलकर ब्राह्मण देवता ने देखा तो कन्हाई भोजन करते दिखलायी पड़े। (वे बोले—) ‘यशोदा जी! आकर अपने पुत्र की करतूत (तो) देखो, इसने बना-बनाया भोजन आकर जूठा कर दिया।’ ब्रजरानी ने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की (कि बालक को क्षमा करें और दुबारा भोजन बना लें)। फिर बहुत-सा घी, मिश्री, दूध मँगा दिया। सूरदास जी (के शब्दों में यशोदाजी कृष्ण से) कहते हैं—श्याम सुन्दर! यह लड़कपन क्यों करते हो? बार-बार तुमने ब्राह्मण को खिझाया (तंग किया) है।

राग रामकली

पाँडे नहिं भोग लगावन पावै।

करि-करि पाक जबै अर्पित है, तबहीं-तब छूवैं आवै॥

इच्छा करि मैं बाम्हन न्यौत्यू, ताकौं स्याम खिझावै।

वह अपने ठाकुरहि जिंवावै, तू ऐसैं उठि धावै॥

जननी! दोष देति कत मोकौं, बहु बिधान करि ध्यावै।

नैन मूँदि, कर जोरि, नाम लै बारहिं बार बुलावै॥

कहि, अंतर क्यों होइ भक्त सौं जो मैरे मन भावै?

सूरदास बलि-बलि बिलास पर, जन्म-जन्म जस गावै॥

व्याख्या: पाँडे जी भोग नहीं लगा पाते। जब-जब वे खीर बनाकर (अपने आराध्य को) अर्पित करते हैं, तभी-तभी मोहन उसे छू जाता है। (इससे माता डाँटने लगीं—) ‘मैंने तो बड़ी उमंग से ब्राह्मण को निमन्त्रण दिया और श्याम! तू उन्हें चिढ़ाता है।’ वे अपने ठाकुरजी को भोग लगाते हैं, तब तू यों ही उठकर दौड़ पड़ता है।’ (यह सुनकर

मोहन बोले—) 'मैया! तू मुझे क्यों दोष दे रही है, वही ब्राह्मण (स्वयं) बड़े विधि-विधान से मेरा ध्यान करता है। नेत्र बंद करके, हाथ जोड़कर बार-बार नाम लेकर मुझे बुलाता है। भला, बता-जो भक्त मेरे मन को भा जाता है, उससे मुझमें अन्तर कैसे रहे? (मैं उससे दूर कैसे रह सकता हूँ।)' सूरदास तो इस लीला पर बार-बार न्योछावर है (प्रभो! मुझे तो यही वरदान दो कि) जन्म-जन्म में तुम्हारे ही यश का गान करूँ।

राग बिलावली

सफल जन्म, प्रभु आजु भयौ।

धनि गोकुल, धनि नन्द-जसोदा, जाकैं हरि अवतार लयौ॥

प्रगट भयौ अब पुण्य-सुकृत-फल, दीन-बंधु मोहि दरस दयौ।

बारंबार नंद कै आँगन, लोटत द्विज आनंदमयौ॥

मैं अपराध कियौ बिनु जानैं, कौ जानै किहिं भेष जयौ।

सूरदास-प्रभु भक्त-हेत बस जसुमति-गृह आनंद लयौ॥

व्याख्या: (ब्राह्मण की समझ में बात आ गयी। वह बोला—) 'प्रभो! मेरा जीवन आज सफल हो गया। यह गोकुल धन्य है, श्री नन्द जी और यशोदा जी धन्य हैं, जिनके यहाँ साक्षात् श्रीहरि ने अवतार लिया, मेरे समस्त पुण्यों एवं उत्तम कर्मों का फल आज प्रकट हुआ जो दीनबंधु प्रभु ने मुझे दर्शन दिया।' (इस प्रकार कहता) ब्राह्मण आनन्दमग्न होकर बार-बार श्री नन्द जी के आँगन में लोट रहा है। (वह श्याम सुन्दर से प्रार्थना करता है) 'प्रभो! बिना जाने (अज्ञानवश) मैंने अपराध किया (आपका अपमान किया, मुझे क्षमा करें)। पता नहीं किस वेश से (मेरे किस साधन से) आप जीते गये (मुझ पर प्रसन्न हुए)। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे प्रभु ने भक्त के प्रेमवश श्री यशोदा के घर में यह आनन्द-क्रीड़ा की है।

राग धनाश्री

अहो नाथ! जेड़-जेड़ सरन आए तेड़-तेड़ भए पावन।
महापतित-कुल-तारन, एकनाम अघ जारन, दारुन दुख बिमरावन॥

मोतें को हो अनाथ, दरसन तैं भयौ सनाथ, देखत नैन जुड़ावन।
भक्त हेतदेह धरन, पुहुमी कौ भार हरन, जनम-जनम मुक्तावन॥
दीनबन्धु, असरन के सरन, सुखनि जसुमति के कारन देह धरावन।
हित कै चित की मानत सबके जियकी जानत सूरदास-मन-भावन॥

व्याख्या: (ब्राह्मण कहता है—) 'हे स्वामी! जो-जो आपकी शरण आये, वे सब परम पवित्र हो गये। आपका एक ही नाम (आपके नाम का एक बार उच्चारण) ही महान् पतितों के भी कुल का उद्धार करने वाला, पापों को भस्म करने वाला तथा कठिन-से-कठिन दुःखों को विस्मृत करा देने वाला है। मेरे समान अनाथ कौन था; किंतु आपके दर्शन से सनाथ हो गया, आपका दर्शन ही नेत्रों को शीतल करने वाला है। आप भक्तों का मङ्गल करने, पृथ्वी का भार दूर करने एवं (अपने भक्तों को) जन्म-जन्मान्तर से छुड़ा देने के लिए अवतार धारण करते हैं। दीनबन्धु! आप अशरण को त्राण देने वाले हैं, सुखमयी यशोदा जी के लिए आपने यह अवतार धारण किया है। आप सबके चित्त के प्रेम-भाव का आदर करते हैं, सबके मन की बात जानते हैं।' सूरदासजी कहते हैं—मेरे मनभावन आप ही हैं।

राग बिलावल

मया करिये कृपाल, प्रतिपाल संसार उदधि जंजाल तैं परौ पार।
काहू के ब्रह्मा, काहू के महेस, प्रभु! मेरे तौ तुमही आधार॥
दीन के दयाल हरि, कृपा मोकौ करि, यह कहि-कहि लोटत बार-बार।
सूर स्याम अंतरजामी स्वामी जगत के कहा कहौ करौ निरवार॥

व्याख्या: (ब्राह्मण कहता है—) 'हे कृपालु! मुझ पर कृपा कीजिये और मेरा पालन कीजिये, जिससे इस संसार-सागररूपी जंजाल में पड़ा मैं इसके पार हो जाऊँ। किसी के आधार ब्रह्मा जी हैं। हे दीनों पर दया करने वाले श्रीहरि! मुझ पर कृपा कीजिये। श्याम सुन्दर! आप अन्तर्यामी हैं, जगत् के स्वामी हैं, आपसे और स्पष्ट करके क्या कहूँ।' सूरदास जी कहते हैं कि यह कहता हुआ वह (ब्राह्मण आँगन में) बार-बार लोट रहा है।

खेलत स्याम पौरि कैं बाहर ब्रज-लरिका सँग जोरी।
 तैसेइ आपु तैसेई लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी॥
 गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखति नँदरानी।
 अति पुलकित गदगद मुख बानी, मन-मन महारि सिहानी॥
 माटी लै मुख मेलि दई हरि, तबहि जसोदा जानी।
 साँटी लिये दौरि भुज पकस्यौ, स्याम लँगरई ठानी॥
 लरिकनि कौं तुम सब दिन झुठवत, मोसौं कहा कहौगे।
 मैया! मैं माटी नहिं खाई, मुख देखैं निबहौगे॥
 बदन उधारि दिखायौ त्रिभुवन, बन धन नदी-सुमेर।
 नभ-ससि-रबि मुख भीतरहीं सब सागर-धरनी-पेर॥
 यह देखत जननी मन ब्याकुल, बालक-मुख कहा आहि।
 नैन उधारि, बदन हरि मुँछौ, माता-मन अवगहि॥
 झूठें लोग लगावत मोकों, माटी मोहि न सुहावै।
 सूरदास तब कहित जसोदा, ब्रज-लोगनि यह भावै।

व्याख्या: द्वार के बाहर ब्रज के बालकों को एकत्र करके श्याम सुन्दर खेल रहे हैं। वैसे ही आप हैं, वैसे ही सब बालक हैं, सब अनजान हैं, सबमें थोड़ी ही समझ है। कभी गाते हैं, कभी किसी को पुकारते हैं, कभी किलकारी मारते हैं, यह सब क्रीड़ा श्री नन्दरानी छिपकर देख रही हैं। उनका शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा है। कण्ठ स्वर गदगद हो गया है, ब्रजरानी मन-ही-मन मुग्ध हो रही हैं। इतने में श्याम ने मिट्टी लेकर मुख में डाल ली तभी यशोदा जी इसे जान (देख) लिया। वे छड़ी लेकर दौड़ पड़ी और उन्होंने (श्याम की) भुजा पकड़ ली; इससे श्याम सुन्दर मचलने लगे। (माता ने कहा-) 'प्रत्येक दिन तुम बालकों को झूठा सिद्ध कर देते हो, पर अब मुझसे क्या कहोगे? (कौन-सा बहाना बनाओगे?), (श्याम सुन्दर बोले-) 'मैया! मैंने मिट्टी नहीं खायी।' (माता बोली-) 'मेरे मुख देख लेने पर (ही) छुटकारा पाओगे।' श्याम ने मुख खोलकर उसमें तीनों लोक दिखला दिये-घने वन, नदियाँ, सुमेरु आदि पर्वत, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र तथा पृथ्वी आदि समस्त सृष्टिचक्र मुख के भीतर ही दिखा दिया। यह देखकर माता

मन में अत्यन्त व्याकुल हो गयीं—‘मेरे बालक के मुख में यह सब क्या है? माता के मन की बात समझकर श्याम सुन्दर ने मुख बंद कर लिया और बोले—‘मैया! तू नेत्र तो खोल (आँखें क्यों मूँदे हैं)। लोग मुझे झूठमूठ दोष देते हैं, मिट्टी तो मुझे अच्छी ही नहीं लगती।’ सूरदास जी कहते हैं, तब माता यशोदा ने कहा—‘ब्रज के लोगों को यह (दूसरे की झूठी चुगली करना) अच्छा लगता है।’ (मेरे लाल को सब झूठा दोष लगाते हैं।)

राग धनाश्री

मोहन काहें न उगिलौ माटी।

बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिये साँटी॥

महतारी सौ मानत नाही कपट-चतुरई ठाटी।

बदन उधारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी॥

बड़ी बार भइ, लोचन उधरे, भरम-जवनिका फाटी।

सूर निरखि नँदरानि भ्रमति भइ, कहति न मीठी-खाटी॥

व्याख्या: श्री ब्रजरानी हाथ में छड़ी लिये कहती हैं—‘मोहन! मिट्टी उगल क्यों नहीं देते?’ वे बार-बार (इस कार्य से) अपने लाल के मन में घृणा उत्पन्न करना चाहती हैं। (किंतु) श्रीकृष्ण (अपनी) माता की बात नहीं मान रहे हैं, उन्होंने कपटभरी चतुराई ठान ली है। सूरदासजी कहते हैं कि तब श्याम ने मुख खोलकर नाटके के समान (सम्पूर्ण विश्व) दिखला दिया, इससे श्रीनन्द रानी बड़ी देर तक खुले नेत्रों से (अपलक) देखती रह गयीं; मैं माता हूँ और ये मेरे पुत्र हैं—उनके इस भ्रम का पर्दा फट गया। (इस अद्भूत दृश्य को) देखकर वे इतनी चकरा गयीं कि भला-बुरा कुछ भी नहीं कह पातीं।

राग रामकली

मो देखत जसुमति तेरैं ढोटा, अबहीं माटी खाई।

यह सुनि कै रिस करि उठि धाई, बाँह पकरि लै आई॥

इक कर सौं भुज गहि गाढ़ें करि, इक कर लीन्ही साँटी।
 मारति हौं ताहि अबहिं कन्हैया, बेगि न उगिलै माटी॥
 ब्रज-लरिका सब तेरे आगैं, झूठी कहत बनाइ।
 मेरे कहैं नहीं तू मानति, दिखरावौं मुख बाइ॥
 अखिल ब्रह्मांड-खंड की महिमा, दिखराई मुख माँहि।
 सिंधु-सुमेर-नदी-बन-पर्वत चकित भई मन चाहि॥
 करतैं साँटि गिरत नहिं जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी।
 सूर कहै जसुमनि मुख मूँदौ, बलि गई सारंगपानी॥

व्याख्या: (किसी सखा ने कहा—) 'यशोदा जी! तुम्हारे पुत्र ने मेरे देखते-देखते अभी मिट्टी खायी है।' यह सुनते ही माता क्रोध करके दौड़ पड़ी और बाँह पकड़कर श्याम को (घर) ले आयीं। एक हाथ से कसकर भुजा पकड़कर दूसरे हाथ में छड़ी ले ली (और डॉक्टर बोलीं—) 'कन्हैया! मैं अभी तुझे मारती हूँ, झटपट तू मिट्टी उगलता है या नहीं?' (श्याम सुन्दर बोले—) 'मैया! ब्रज के ये सभी बालक तेरे सम्मुख झूठी बात बनाकर कहते हैं। यदि तू मेरे कहने से नहीं मानती तो मुख खोलकर दिखला देता हूँ।' (यों कहकर) श्याम ने मुख के भीतर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तार दिखला दिया। समुद्र, सुमेरु आदि पर्वत, नदियाँ तथा वन (मुख में देखकर) माता अत्यधिक आश्चर्य में पड़ गयीं। हाथ से छड़ी कब गिर गयी, इसका उसे पता ही न लगा। श्याम का हाथ छोड़कर व्याकुल हो गयी। सूरदास जी कहते हैं कि यशोदा जी ने कहा—'मेरे शार्ङ्गपाणि! अपना मुख बंद कर लो, मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ।'

राग सारंग

नंदहि कहति जसौदा रानी।

माटी कै मिस मुख दिखरायौ, तिहूँ लोक रजधानी॥
 स्वर्ग, पताल, धरनि, बन, पर्वत, बदन माँझ रहे आनी।
 नदी-सुमेर देखि चकित भई; याकी अकथ कहानी॥
 चितै रहे तब नंद जुवति-मुख मन-मन करत बिनानी।
 सूरदास तब कहति जसोदा गर्ग कही यह बानी॥

व्याख्या: श्री यशोदा रानी नन्द जी से कहती हैं—‘मिट्टी के बहाने कन्हाई ने अपना मुख खोलकर दिखलाया; पर उसमें तो लोकों की राजधानियाँ ही नहीं, अपितु स्वर्ग, पाताल, पृथ्वी, वन, पर्वत—सभी आकर बस गये हैं। मैं तो नदियाँ और सुमेरु पर्वत (मुख में) आश्चर्य में पड़ गयी, इस मोहन की तो कथा ही अवर्णनीय है।’ (यह बात सुनकर) श्री नन्द जी पत्नी के मुख की ओर देखते रह गये और मन-ही-मन सोचने लगे—‘यह नासमझ है।’ सूरदास जी कहते हैं कि तब यशोदा जी ने कहा—‘महर्षि गर्ग ने भी तो यही बात कही थी (कि कृष्णचन्द्र श्री नारायण का अंश है)।’

राग सोरठ

कहत नंद जसुमति साँ बात।
 कहा जानिए, कह तैं देख्यौ, मेरैं कान्ह रिसात॥
 पाँच बरष को मेरौ नन्हैया, अचरज तेरी बात।
 बिनहीं काज साँटि लै धावति, ता पाछैं बिललात॥
 कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-अन्हात।
 सूर स्याम कौं कहा लगावति, बालक कोमल-बात॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं, श्री नन्दजी से यह बात कह रहे हैं—‘क्या जानें मेरे कन्हाई में तुमने क्या देख लिया, जिसके कारण उस पर तुम (इतना) खीझती हो? मेरा नन्हा लाल तो अभी पाँच ही वर्ष का है। तुम्हारी बात तो बड़ी आश्चर्यजनक है। बिना काम तुम उसके पीछे चिल्लाती-पुकारती छड़ी लेकर दौड़ती हो। मेरे बलराम और कन्हाई खेलते, खाते, स्नान करते कुशलपूर्वक रहें (मैं तो यही चाहता हूँ)। श्याम सुन्दर तो अभी बालक है। तोतली कोमल वाणी बोलता है, तुम उसे सब पता नहीं क्या दोष लगा रही हो।’

राग बिलावल

देखौ री! जसुमति बौरानी।
 घर-घर हाथ दिवावति डोलति, गोद लिए गोपाल बिनानी॥

जानत नाहिं जगतगुरु माधव, इहिं आए आपदा नसानी।
जाकौ नाउँ सक्ति पुनि जाकौ, ताकौं देत मंत्र पढ़ि पानी॥
अखिल ब्रह्मंड उदर गत जाकैं, जाकौ जोति जल-थलहिं समानी।
सूर सकल साँची मोहि लागति, जो कछु कही गर्ग मुख बानी॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(गोपियाँ कहती हैं—) देखो तो सखी! यशोदा जी पगली हो गयी हैं। 'ये अनजान बनी गोपाल को गोद में लिये घर-घर उनके सिर पर (आशीर्वाद का) हाथ रखवाती घूम रही हैं। जानती नहीं कि ये तो साक्षात् जगत्पूज्य लक्ष्मीकान्त हैं। इनके (गोकुल में) आने से ही (हमारी) सब आपत्तियाँ दूर हो गयी हैं। जिसके नाम ही मन्त्र हैं और (उन मन्त्रों में) जिसकी शक्ति है, उसी के ऊपर मन्त्र पढ़कर जल के छींटें देती हैं। समस्त ब्रह्माण्ड जिसके उदर में है, जल-स्थल में सर्वत्र जिसकी ज्योति व्याप्त है, वही ये श्याम सुन्दर हैं। महर्षि गर्ग ने अपने मुख से जो कुछ कहा था, वह सब मुझे तो सच्चा लगता है।

राग धनाश्री

गोपाल राइ चरननि हाँ काटी।

हम अबला रिस बाँचि न जानी, बहुत लगि गइ साँटी॥

वारों कर जु कठिन अति कोमल, नयन जरहु जिनि डाँटी।

मधु, मेवा पकवान छाँड़ि कै, काहें खात हौ माटी॥

सिगरोइ दूध पियौ मेरे मोहन, बलहि न दैहौं बाँटी।

सूरदास नंद लेहु दोहनी, दुहहु लाल की नाटी॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं— (माता पश्चात्ताप करती रह रही हैं—) 'अपने राजा गोपाल के चरणों में तो कट गयी (इसके सामने मैं लज्जित हो गयी)! मैं अबला (नासमझ) हूँ। अपने ही क्रोध को रोक न सकी। छड़ी की चोट लाल को बहुत लग गयी। इस परम कोमल पर अपने इन अत्यन्त कठोर हाथों को न्योछावर कर दूँ; मेरे ये नेत्र जल जायँ, जिससे मोहन को मैंने डाँटा। लाल! तुम मधु, मेवा और पकवान छोड़कर मिट्टी क्यों खाते हो? मेरे मोहन! तुम सारा दूध पी

लो, बलराम को इसमें से भाग पृथक् करके नहीं दूँगी। ब्रजराज! वह दोहनी लो और मेरे लाल की नाटी (छोटी) गैया दुह दो।'

राग गौरी

मैया री, मोहि माखन भावै।

जो मेवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रुचि आवै॥

ब्रज-जुवती इक पाछें ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात।

मन-मन कहति कबहुँ अपनैँ घर, देखौँ माखन खात॥

बैठैं जाइ मथनियाँ कैँ ढिग, मैं तब रहौँ छपानी।

सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालनि-मन की जानी॥

व्याख्या: (श्याम सुन्दर बोले—) 'मैया! मुझे तो मक्खन अच्छा लगता है। तू जिन मेवा ओर पकवान की बात कहती है, वे तो मुझे रुचिकर नहीं लगते।' (उस समय मोहन के) पीछे खड़ी ब्रज की एक गोपी श्याम की बातें सुन रही थी। वह मन-ही-मन कहने लगी—'कभी इन्हें अपने घर में मक्खन खाते देखूँ। ये आकर मटके के पास बैठ जायँ और मैं उस समय छिपी रहूँ।' सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी अन्तर्यामी हैं, उन्होंने गोपिका के मन की बात जान ली।

गए स्याम तिहि ग्वालनि कैँ घर।

देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितै चले तब भीतर॥

हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ।

सूनेँ सदन मथनियाँ कैँ ढिग, बैठि रहे अरगाइ॥

माखन भरी कमोरी देखत, लै-लै लागे खान।

चितै रहे मनि-खंभ-छाहँ तन, तासौँ करत सयान॥

प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग।

आपु खात, प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग?

जौ चाहो सब देउँ कमोरी, अति मीठौ कत डारत।

तुमहि देत मैं अति सुख पायौ, तुम जिय कहा बिचारत?

सुनि-सुनि बात स्याम के मुख की, उमंगि हँसी ब्रजनारी।

सूरदास प्रभु निरखि ग्वाल-मुख तब भजि चले मुरारी॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर उस गोपिका के घर गये। (पहुँचते ही) देखा कि द्वार पर कोई नहीं है, तब इधर-उधर देखकर भीतर चल दिये। जब गोपी ने श्याम को आते देखा तो स्वयं छिप गयी। सूने घर में मटके के पास मोहन चुप साधकर बैठ गये। मक्खन से भरा मटका देखते ही निकाल-निकालकर खाने लगे। पास के मणिमय खंभे में अपने शरीर का प्रतिबिम्ब देखकर (उसे बालक समझकर) उसके साथ चतुराई से बातें करने लगे, 'मैं आज पहली बार चोरी करने आया हूँ, तुम्हारा-मेरा साथ तो अच्छा हुआ।' स्वयं खाते हैं और प्रतिबिम्ब को खिलाते हैं। जब (मक्खन) गिरता है तो कहते हैं—'यह तुम्हारा क्या ढंग है? यदि चाहो तो तुम्हें पूरा मटका दे दूँ। मक्खन अत्यन्त मीठा है, इसे गिरा क्यों रहे हो? तुम्हें भाग देने में तो मेरे मन में बड़ा सुख हुआ है। तुम अपने चित्त में क्या विचार करते हो?' श्याम सुन्दर के मुख की ये बातें सुन-सुनकर गोपी जोर से हँस पड़ी। सूरदास जी कहते हैं कि गोपिका का मुख देखते ही मेरे स्वामी श्री मुरारि भाग चले।

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।

पूछति सखी परस्पर बातें, पायौ पर्यो कछू कहूँ तैं री?

पुलकित रोम-रोम, गदगद, मुख बानी कहत न आवै।

ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हम कौं क्यों न सुनावै॥

तन न्यारौ, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप।

सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं, देख्यौ रूप अनूप॥

व्याख्या: वह गोपी अपने मन में प्रफुल्लित हुई घूम रही है। सखियाँ उससे आपस में यह बात पूछती हैं—'तूने क्या कहीं कुछ पड़ा माल पा लिया है? तेरा रोम-रोम पुलकित है, कण्ठ गदगद हो रहा है, जिसके कारण मुख से बोला नहीं जाता ऐसा क्या है (जिससे तू इतनी प्रसन्न है)? अरी सखी! वह बात हमको क्यों नहीं सुनाती? हमारा शरीर अवश्य अलग-अलग है; परंतु प्राण तो एक ही है, हम-तुम तो एक ही हैं (फिर हमसे क्यों छिपाती हो)? सूरदास जी कहते हैं कि तब उस गोपी ने सखियों से कहा—'मैंने एक अनुपम रूप देखा है।'

राग गूजरौ

आजु सखी मनि-खंभ-निकट हरि, जहँ गोरस काँ गौ री।
निज प्रतिबिम्ब सिखावत ज्यों सिंसु, प्रगट करै जनि चोरी॥
अरध बिभाग आजु तैं हम-तुम, भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कतहिँ डारत हौ, छाड़ि देहु मति भोरी॥
बाँट न लेहु सबै चाहत हौ, यहै बात है थोरी।
मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी॥
प्रेम उमगि धीरज न रह्यौ, तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुंज की खोरी॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं कि (उस गोपिका ने बताया—)
'सखी (मेरे घर में मणिमय खंभे के पास) जहाँ गोरस का ठिकाना
है, वहाँ जाकर श्याम सुन्दर बैठे और उस खंभे में पड़े प्रतिबिम्ब को
बालक की भाँति (बालक मानकर) सिखलाने लगे—'तू मेरी चोरी प्रकट
मत करना। हमारी जोड़ी अच्छी मिली है, आज से हमारा-तुम्हारा आधे-
आधे का भाग रहा। मक्खन खाओ! इसे गिराते क्यों हो? यह भोली
बुद्धि छोड़ दो। तुम बँटवारा करके नहीं लेना चाहते, सब-का-सब चाहते
हो? यह भोली बुद्धि छोड़ दो। तुम बँटवारा करके नहीं लेना चाहते,
सब-का-सब चाहते हो? यही बात तो अच्छी नहीं। यह अत्यन्त मीठा
है; (पहले खाकर देखो) यह तुमको अत्यन्त रुचिकर लगे तो भरा हुआ
मटका तुम्हीं को दे दूँगा। (यह सुनकर) मेरा प्रेम उल्लसित हो उठा,
धैर्य नहीं रहा; तब मैं मुख घुमाकर प्रत्यक्ष (जोर से) हँस पड़ी। इससे
श्याम संकुचित हो गये, मेरा मुख देखते ही वे कुंज-गली में भाग गये।'

राग बिलावल

प्रथम करी हरि माखन-चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज-खोरी॥
मन में यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ।
गोकुल जनम लियौ सुख कारन, सब कैँ माखन खाउँ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख-भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौँ, ये मेरे ब्रज-लोग॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर पहली बार मक्खन की चोरी की ओर इस प्रकार गोपिका के मन की इच्छा पूरी करके स्वयं ब्रज की गलियों में भाग गये। अब श्याम मन में यही विचार करने लगे कि 'मैंने तो ब्रज वासियों को आनन्द देने के लिए ही गोकुल में जन्म लिया है; अतः (सबको आनन्द देने के लिए) ब्रज के प्रत्येक घर में जाऊँगा और यहाँ मक्खन खाऊँगा। मैया यशोदा तो मुझे (निरा) बालक समझती हैं, गोपियों से मिलकर उनके प्रेम-रस का उपभोग करूँगा।' सूरदास जी कहते हैं—मेरे स्वामी प्रेमपूर्वक कर रहे हैं कि 'ये ब्रज के लोग तो मेरे निज जन हैं।'

चकित भई ग्वालनि तन हेरौ।

माखन छाँड़ि गई मथि वैसेहिं, तब तैं कियौ अबेरौ॥

देखै जाइ मटुकिया रीती, मैं राख्यौ कहूँ हेरि।

चकित भई ग्वालनि मन अपनै, ढूँढ़ति घर फिरि-फेरि॥

देखति पुनि-पुनि घर के बासन, मन हरि लियौ गोपाल।

सूरदास रस-भरी ग्वालिनी, जानै हरि कौ ख्याल॥

व्याख्या: इस आश्चर्य में पड़ी गोपी का मुख तो देखो। (यह सोच रही है—) 'मैं तो दही मथकर मक्खन वैसे ही छोड़ गयी थी, उस समय से लौटने में कुछ देर अवश्य मैंने कर दी।' (अपने मटके के पास जाकर उसे खाली देखकर सोचती है—) 'मैंने कहीं अन्यत्र तो (माखन) नहीं रख दिया?' इसके मन को तो गोपाल ने हर लिया है (इसलिए ठीक सोच पाती नहीं)। घर के बर्तनों को बार-बार देखती है। सूरदास जी कहते हैं—यह समझते ही कि यह मेरे श्याम का (मधुर) खेल है; गोपी प्रेम में मग्न हो गयी।

राग बिलावल

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात।

दधि-माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल-सखा सँग खात॥

ब्रज-बनिता यह सुनि मत हरषित, सदन हमारै आवैं।

माखन खात अचानक पावैं, भुज हरि उरहिं छुवावैं॥

मन-हीं-मन अभिलाष करति सब हृदय यह ध्यान।

सूरदास प्रभु कौं घर तैं लैं दैहौं माखन खान॥

व्याख्या: (शीघ्र ही) ब्रज के प्रत्येक घर में यह बात प्रकट हो गयी कि श्याम दही और मक्खन चोरी करके ले लेते हैं और गोप-सखाओं के साथ खाते हैं। ब्रज की गोपियाँ यह सुनकर हर्षित हो रही हैं। (वे सोचती हैं—) 'मोहन हमारे घर भी आयें, उन्हें मक्खन खाते मैं अचानक पा जाऊँ और दोनों भुजाओं का हृदय से स्पर्श कर लूँ।' सब मन-ही-मन यही अभिलाषा करती हैं, हृदय में उन्हीं का ध्यान करती रहती हैं। सूरदास जी कहते हैं—(मेरे स्वामी के विषय में वे सोचती हैं कि) 'घर से लेकर हम मोहन को खाने के लिए मक्खन देंगी।'

राग कान्हरी

चली ब्रज घर-घरनि यह बाता।

नंद-सुत, सँग सखा लीन्हें, चोरि माखन खात॥

कोउ कहति, मेरे भवन भीतर अबहिं पैठे धाइ।

कोउ कहति, मोहि देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ॥

कोउ कहति, किहिं भाँति हरि कौं, देखौं अपने धाम।

हेरि माखन देउँ आछौं, खाइ कितनौ स्याम॥

कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धराँ अँकवारि।

कोउ कहति, मैं बाँधि राखौं, को सकै निरवारि॥

सूर प्रभु के मिलन कारन, करति बुद्धि बिचार।

जोरि कर बिधि कौं मनावति, पुरुष नंद-कुमार॥

व्याख्या: ब्रज के घर-घर में यह चर्चा चलने लगी कि नन्द नन्दन साथ में सखाओं को लेकर चोरी से मक्खन खाते हैं। कोई गोपी कहती है—'मेरे घर में अभी दौड़कर घुस गये थे' कोई कहती है—'मुझे द्वार पर देखकर (जिधर से आये थे) उधर ही भाग गये।' कोई कहती है—'मैं कैसे अपने घर में उन्हें देखूँ? और श्याम सुन्दर जितना खायँ, भली प्रकार देखकर उतना ही अच्छा मक्खन उन्हें दूँ?' कोई कहती है—'यदि मैं देख पाऊँ तो दोनों भुजाओं में भरकर पकड़ लूँ।' कोई कहती है—'मैं बाँधकर रख लूँ, फिर उन्हें कौन छुड़ा सकता है?' सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी से मिलने के लिए सब अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार

विचार करती हैं और दोनों हाथ जोड़कर विधाता से मनाती हैं—‘हमें नन्दनन्दन ही पतिरूप में मिलें।’

राग सारंग

गोपालहि माखन खान दै।

सुनि री सखी, मौन है रहिए, बदन दही लपटान दै॥

गहि बहियाँ हों लैके जैहाँ, नैननि तपति बुझान दै।

याकौ जाइ चौगुनौ लैहाँ, मोहि जसुमति लौं जान दै॥

तू जानति हरि कछू न जानत सुनत मनोहर कान दै।

सूर स्याम ग्वालनि बस कीन्हौ राखति तन-मन-प्राण दै॥

व्याख्या: (एक गोपी कहती है—) ‘गोपाल को मक्खन खाने दो। सखियो! सुनो, सब चुप हो रहो; इन्हें मुख में दही लिपटाने दो (जिससे प्रमाणित हो जाय कि इन्होंने चोरी की है)। तनिक नेत्रों की जलन (इन्हें देखकर) शान्त कर लेने दो, फिर इनका हाथ पकड़कर मैं इन्हें ले जाऊँगी। मुझे यशोदा जी तक जाने तो दो, इसका चौगुना (मक्खन) जाकर लूँगी।’ (सखियाँ कहती हैं—) ‘तू समझती है कि मोहन कुछ जानता ही नहीं, वह सुन्दर तो कान लगाकर सुन रहा है।’ सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर ने गोपी को वश में कर लिया है। (मक्खन तो दूर) वह तो तन, मन और प्राण देकर भी उन्हें (अपने यहाँ) रख रही (रखना चाहती) है।

माई! हों तकि लागि रही।

जब घर तैं माखन लै निकस्यौ, तब मैं बाँह गही॥

तब हँसि कै मेरौ मुख चितयौ, मीठी बात कही।

रही ठगी, चेटक-सौ लाग्यौ, परि गइ प्रीति सही॥

बैठो कान्ह, जाऊँ बलिहारी, ल्याऊँ और दही।

सूर स्याम पै ग्वालि सयानी सरबस दै निबही॥

व्याख्या: (गोपी कहती है—) ‘सखी! मैं ताक में लगी थी। ज्यों ही घर में से मक्खन लेकर मोहन निकला त्यों ही मैंने हाथ पकड़

लिया। तब उसने हँसकर मेरे मुख की ओर देखकर मधुरवाणी से कुछ कह दिया। इससे मैं ठगी रह गयी, जैसे जादू हो गया हो ऐसी दशा हो गयी, उससे मेरा सच्चा प्रेम हो गया।' (मैंने कहा—) 'कन्हाई! बैठो, मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ और भी दही ले आती हूँ (भली प्रकार खालो)' सूरदास जी कहते हैं कि इस चतुर गोपी ने श्याम सुन्दर पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया और (सहज ही संसार-सागर से) तर गयी।

राग गौरी

आपु गए हरुएँ सूनै घर।

सखा सबै बाहिर ही छाँड़े, देख्यौ दधि-माखन हरि भीतर॥
तुरत मथ्यौ दधि-माखन पायौ, लै-लै खात, धरत अधरनि पर।
सैन देइ सब सखा बुलाए, तिनहि देत भरि-भरि अपनैँ कर॥
छिटकि रही दधि-बूँद हृदय पर, इत उत चितवत करि मन मैं डर।
उठत ओट लै लखत सबनि कौं, पुनि लै खात लेत ग्वालनि बर॥
अंतर भई ग्वालि यह देखति मगन भई, अति उर आनंद भरि।
सूर स्याम-मुख निरखि थकित भइ, कहत न बनै, रही मन दै हरि॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर स्वयं धीरे से सूने घर में घुस गये, सभी सखाओं को बाहर ही छोड़ दिया; वहाँ भीतर उन्होंने दही और मक्खन देखा। तुरंत के मथे हुए दही से निकला मक्खन वे पी गये। उसे उठा-उठाकर होठों पर रखने और आरोगने लगे। (फिर) संकेत करके सब सखाओं को बुला लिया, उन्हें भी अपने हाथों में भर-भरकर देने लगे। वक्षस्थल पर दही की बूँदें छिटक रही हैं। मन में भय करके इधर-उधर देखते भी जाते हैं। सखाओं की आड़ लेकर उठते हैं और सबको देख लेते हैं (कि कोई कहीं से देखती तो नहीं) फिर मक्खन लेकर खाते हैं, इन श्रेष्ठ (बड़भागी) गोप बालकों के हाथ से भी लेते हैं। छिपी हुई गोपी यह सब देख रही है। उसके हृदय में अत्यन्त आनन्द भर रहा है, वह मगन हो रही है। सूरदास जी कहते हैं—श्याम सुन्दर के मुख को देखकर वह थकित (निश्चेष्ट) हो रही है, उससे कुछ कहते (बोलते) नहीं बनता, श्याम सुन्दर को उसने अपना मन अर्पित कर दिया है।

राग धनाश्री

गोपाल दुरे हैं माखन खात।
 देखि सखी! सोभा जु बनी है स्याम मनोहर गात॥
 उठि अवलोकि ओट ठाढ़े है, जिहिं बिधि हैं लखि लेत।
 चकित नैन चहुँ दिसि चितवत, और सखनि कौं देत॥
 सुंदर कर आनन समीप, अति राजत इहिं आकार।
 जलरुह मनौ बैर बिधु सौं तजि, मिलत लएँ उपहार॥
 गिरि-गिरि परत बदन तैं उर पर हैं दधि, सुत के बिंदु।
 मानहुँ सुभग सुधा-कन बरषत प्रियजन आगम इंदु॥
 बाल-बिनोद बिलोकि सूर-प्रभु सिथिल भई ब्रजनारि।
 फुरै न बचन बरजिवैं कारन, रहीं बिचारि-बिचारि॥

व्याख्या: (एक गोपी कहती है—) 'सखी! गोपाल छिपे-छिपे मक्खन खा रहे हैं। उनके मनोहर श्याम शरीर की देख तो कैसी शोभा बनी है? किस प्रकार वे उठते हैं, आड़ में खड़े होकर इधर-उधर ताक लेते हैं। चकित नेत्रों से चारों ओर देखते हैं। दूसरे सखाओं को (मक्खन) देते हैं, इससे इनका सुन्दर हाथ सखाओं के मुख के पास इस प्रकार शोभा देता है मानो कमल चन्द्रमा से अपनी शत्रुता छोड़कर उपहार लिये हुए उससे मिल रहा है। मक्खन के बिन्दु बार-बार मुख से वक्षस्थल पर गिर पड़ते हैं मानो चन्द्रमा अपने प्रियजन (श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में स्थित अपनी बहिन लक्ष्मी) का आगमन समझकर सुहावनी अमृत की बूँदों की वर्षा कर रही है। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी का बाल-बिनोद देखकर ब्रज की सभी नारियाँ (प्रेमवश) शिथिल हो रही हैं, वे सोच-सोचकर रह जाती हैं; किंतु (मोहन को) रोकने के लिए मुख से शब्द निकलते ही नहीं।'

राग सारंग

ग्वालिनि जौ घर देखै आइ।
 माखन खाइ चोराइ स्याम सब, आपुन रहे छपाइ॥

ठाढ़ी भई मथनियाँ कैं ढिग, रीती परी कमोरी।
अबहिं गई, आई इनि पाइनि, लै गयो को करि चोरी?
भीतर गई, तहाँ हरि पाए, स्याम रहे गहि पाइ।
सूरदास प्रभु ग्वालनि आगैं, अपनों नाम सुनाइ॥

व्याख्या: गोपी ने घर में आकर देखा तो (घर की यह दशा थी कि) सब मक्खन चुराकर, खा-पीकर श्याम सुन्दर स्वयं छिप गये थे। वह अपने मटके के पास खड़ी हुई तो (देखती क्या है कि) मटका खाली पड़ा है। (सोचने लगी-) 'मैं अभी-अभी तो गयी थी और इन्हीं पैरों (बिना कहीं रुके) लौट आयी हूँ, इतने में कौन चोरी कर ले गया?' भवन के भीतर गयी तो वहाँ कृष्णचन्द्र मिले। सूरदास जी कहते हैं कि ग्वालिनी के आगे अपना नाम बताकर मेरे स्वामी श्याम सुन्दर ने उसके पैर पकड़ लिये।

राग गौरी

जौ तुम सुनहु जसोदा गोरी।
नंद-नंदन मेरे मंदिर मैं आजु करन गए चोरी॥
हाँ भइ जाइ अचानक ठाढ़ी, कह्यौ भवन मैं को री।
रहे छपाइ, सकुचि रंचक है, भई सहज मति भोरी॥
मोहिं भयौ माखन-पछितावौ, रीति देखि कमोरी।
जब गहि बाहँ कुलाहत कीनी, तब गहि चरन निहोरी॥
लागे लैन नैन जल भरि-भरि, तब मैं कानि न तोरी।
सूरदास-प्रभु देत दिनहिं-दिन ऐसियै लरिक-सलोरी॥

व्याख्या: (वह गोपी नन्दभवन में आकर कहती है-) 'सखी यशोदा जी! यदि तुम सुनो तो एक बात बताऊँ। आज मेरे मकान में चोरी करने नन्दनन्दन गये थे। इतने में मैं (बाहर से लौटकर) वहाँ अचानक जाकर खड़ी हो गयी और पूछा-'घर में कौन है?' तब तो इनकी बुद्धि स्वभावतः भोली हो गयी (कोई उपाय इन्हें सूझा नहीं), सिकुड़कर तनिक-से बनकर छिपे रह गये (अपने अङ्ग सिकोड़कर दुबक गये)। अपनी मटकी खाली देखकर मुझे मक्खन जाने का पश्चात्ताप

(दुःख) हुआ; (इससे) जब इनकी बाँह पकड़कर मैंने कोलाहल किया, तब मेरे पैर पकड़कर अनुनय-विनय करने लगे। बार-बार नेत्रों में आँसू भर लेने लगे (रोने लगे)। तब मैंने संकोच तोड़ा नहीं (चुपचाप चले जाने दिया)। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे स्वामी दिनों-दिन लड़कपन की ऐसी ही प्रिय लगने वाली क्रीड़ा का आनन्द दे रहे हैं।

राग नट

देखी ग्वाल जमुना जात।

आपु ता घर गए पूछत, कौन है, कहि बात॥

जाइ देखे भवन भीतर, ग्वाल-बालक दोइ।

भीर देखत अति डराने, दुहुनि दीन्हों रोइ॥

ग्वाल के काँधैं चढ़े तब, लिए छींके उतारि।

दहौ-माखन खात सब मिलि, दूध दीन्हों डारि॥

बच्छ ल सब छोरि दीन्हे, गए बन समुहाइ।

छिरकि लरिकनि मही सौं भरि, ग्वाल दए चलाइ॥

देखि आवत सखी घर कौं, सखनि कहौ जु दौरि।

आनि देखे स्याम घर मैं, भई ठाढ़ी पौरि॥

प्रेम अंतर, रिस भरे मुख, जुवति बूझति बात।

चितै मुख तन-सुधि बिसारी, कियौ उर नख-घात॥

अतिहिं रस-बस भई ग्वालिनि, गेह-देह बिसारि।

सूर-प्रभु-भुज गहे ल्याई, महारि पै अनुसारि॥

व्याख्या: (श्याम सुन्दर ने) देखा कि गोपी यमुना जी जा रही है तो स्वयं यह बात पूछते हुए कि 'यहाँ कौन है?' उसके घर में चले गये। घर के भीतर जाकर देखा कि वहाँ दो गोपशिशु हैं। (बालकों की) भीड़ देखकर वे दोनों शिशु बहुत डर गये और रो पड़े। तब श्याम सुन्दर एक गोप सखा के कंधे पर चढ़ गये और उन्होंने छींके उतार लिये। सब मिलकर दही और मक्खन खाने लगे तथा दूध गिरा दिया। उसके सभी बछड़ों को खोल दिया, वे सब एकत्र होकर वन में भाग गये। दोनों शिशुओं को मट्टा छिड़ककर उससे सराबोर करके गोप सखाओं

को आगे बढ़ा दिया। उस सखी (गोपी) को आते देखकर सखाओं ने भागते हुए उससे (सारा समाचार) कह दिया। गोपी ने आकर जो अपने घर में श्याम सुन्दर को देखा तो दरवाजे पर (मार्ग रोककर) खड़ी हो गयी। (उसके) हृदय में तो प्रेम था; किन्तु मुख पर क्रोध लाकर उस गोपी ने सारी बात पूछी। किन्तु मोहन के मुख को देखकर वह अपने शरीर की सुधि ही भूल गयी, तभी श्याम सुन्दर ने (चिढ़ाने के लिए) उसके वक्षस्थल पर नख से आघात किया। (अब तो) गोपी रस के अत्यन्त वश हो गयी, अपने शरीर और (सूने) घर को भी वह भूल गयी। सूरदास जी कहते हैं कि वह मेरे स्वामी का हाथ पकड़कर उन्हें अपने साथ ब्रजरानी के पास ले आयी।

राग गौरी

महरि! तुम मानौ मेरी बात।

ढूँढ़ि-ढाँढ़ि गोरस सब घर कौ, हर्यौ तुम्हारे तात॥

कैसे कहति लियौ छींके तैं, ग्वाल-कंध दै लात।

घर नहिं पियत दूध धौरी कौ, कैसे तेरें खात?

असंभाव बोलन आई है, ढीठ ग्वालिनी प्रात।

ऐसौ नाहिं अचगरौ मेरौ, कहा बनावति बात॥

का मैं कहौं, कहत सकुचति हौं, कहा दिखाऊँ गात!

हैं गुन बड़े सूर के प्रभु के, ह्याँ लरिका है जात॥

व्याख्या: (उस गोपी ने आकर कहा—) ‘ब्रजरानी! तुम मेरी बात मानो (उस पर विश्वास करो)! तुम्हारे पुत्र ने मेरे घर का गोरस ढूँढ़-ढाँढ़कर चुरा लिया।’ (यशोदा जी ने पूछा—) ‘यह बात तुम कैसे कहती हो कि इसने छींके पर से गोरस ले लिया?’ (वह बोली—) ‘(किसी) गोप कुमार के कंधे पर रखकर चढ़ गये थे।’ (यशोदा जी बोलीं—) ‘यह घर पर तो धौरी (पद्मगन्धा) गाय का दूध (भी) नहीं पीता, तुम्हारे यहाँ (का दही-मक्खन) कैसे खा जाता है? सवेरे-सवेरे यह ढीठ गोपी असम्भव बात कहने आयी है! तू इतनी बातें क्यों बनाती है? मेरा लड़का इतना ऊधमी नहीं है।’ सूरदास जी कहते हैं—(गोपी ने कहा—) ‘(अब)

मैं क्या कहूँ, कहते हुए संकोच होता है और अपना शरीर कैसे दिखलाऊँ।
ये यहाँ तो लड़के बन जाते हैं; किंतु इनके गुण बहुत बड़े हैं (अनोखे
ऊधम ये किया करते हैं)।'

साँवरेहि बरजति क्यों जु नहीं।

कहा करौं दिन प्रति की बातें, नाहिन परतिं सही॥

माखन खात, दूध लै डारत, लेपत देह दही॥

ता पाछैं घरहू के लरिकनि, भाजत छिरकि मही॥

जो कछु धरहिं दुराइ, दूरि लै, जानत ताहि तहीं॥

सुनहु महरि, तेरे या सुत सौं, हम पचि हारि रहीं॥

चोरी अधिक चतुराई सीखी, जाइ न कथा कही॥

ता पर सूर बछुरुवनि ढीलत, बन-बन फिरतिं बही॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(गोपी ने यशोदा जी से कहा—)
'तुम श्याम सुन्दर को मना क्यों नहीं करती? क्या करूँ, इनकी प्रतिदिन
की बातें (नित्य-नित्य का उपद्रव) सही नहीं जातीं। मक्खन खा जाते
हैं, दूध लेकर गिरा देते हैं, दही अपने शरीर में लगा लेते हैं और इसके
बाद भी (संतोष नहीं होता तो) घर के बालकों पर भी मट्टा छिड़क
कर भाग जाते हैं। जो कुछ वस्तुएँ दूर (ऊपर) ले जाकर छिपाकर रखती
हूँ, उसका वहाँ भी (पता नहीं कैसे) जान लेते हैं। ब्रजरानी! सुनो, तुम्हारे
इस पुत्र से बचने के उपाय करके हम तो थक गयीं। चोरी से अधिक
इन्होंने चतुराई सीख ली है, जिसका वर्णन किया नहीं जा सकता। ऊपर
से बछड़ों को (और) खोल देते हैं, (उन्हें पकड़ने) हम वन-वन
भटकती फिरती हैं।'

राग कान्हारौ

अब ये झूठहु बोलत लोग।

पाँच बरष अरु कछुक दिननि कौ, कब भयौ चोरी जोग॥

इहिं मिस देखन आवतिं ग्वालनि, मुँह फाटे जु गँवारि।

अनदोषे कौं दोष लगावतिं, दई देइगौ टारि॥

कैसें, करि याकी भुज पहुँची, कौन बेग ह्याँ आयौ?
ऊखल ऊपर आनि पीठ दै, तापर सखा चढ़ायौ॥
जौ न पत्याहु चलौ सँग जसुमति, देखौ नैन निहारि।
सूरदास-प्रभु नैकु न बरज्यौ, मन में महरि बिचारि॥

व्याख्या: (श्री यशोदा जी कहती हैं—) 'अब ये लोग झूठ तो बोलने लगे; मेरा बच्चा अभी (कुल) पाँच वर्ष और कुछ दिनों का (तो हुआ) ही है, वह चोरी करने योग्य कब हो गया? ये मुँहफट गोपियाँ इसी बहाने (मेरे मोहन को) देखने आती हैं और मेरे दोषहीन लाल को दोष लगाती हैं। दैव स्वयं इस कलङ्क को मिटा देगा। भला, इस (श्याम) का हाथ वहाँ (छोंके तक) कैसे पहुँच गया (और यदि यह इस गोपी के घर गया था तो गोपी से पहले) किस बल से यहाँ आ गया (इतना शीघ्र वहाँ से आना तो सम्भव नहीं है)।' (गोपी बोली—) 'ऊखल के ऊपर इसने लाकर पीढ़ा रखा और उस पर एक सखा को चढ़ाया (और उस सखा के कंधे पर स्वयं चढ़ गया)। यशोदा जी! यदि आप मेरा विश्वास नहीं करतीं तो मेरे साथ चलें, स्वयं अपनी आँखों से (मेरे घर की दशा भली प्रकार) देख लें।' सूरदास जी कहते हैं कि (इतने पर भी) ब्रजराजी अपने मन में विचार करती रहीं; उन्होंने मेरे स्वामी को तनिक भी डाँटा (रोका) नहीं।

राग देवगंधार

मेरौ गोपाल तनक, सौ, कहा करि जानै दधि की चोरी।
हाथ नचावत आवति ग्वारिनि, जीभ करै किन थोरी॥
कब सीकैं चढ़ि माखन खायौ, कब दधि-मटुकी फोरी।
अँगुरी करि कबहुँ नहिं चाखत, घरहीं भरी कमोरी॥
इतनी सुनत घोष की नारी, रहसि चली मुख मोरी।
सूरदास जसुदा कौं नंदन, जो कछु करै सो थोरी॥

व्याख्या: मेरा नन्हा-सा गोपाल दही की चोरी करना क्या जाने। अरी ग्वालिन! तू हाथ नचाती हुई आती है, अपनी जीभ को कम क्यों

नहीं चलाती? इसने कब तेरे छींके पर चढ़कर मक्खन खाया और कब दही का मटका फोड़ा? घर पर ही कमोरी भरी रहती है, कभी यह अँगुली डालकर चखता तक नहीं है। सूरदास जी कहते हैं—इतनी फटकार सुनकर ब्रज की ग्वालिन चुपचाप मुँह मोड़कर (निराश होकर) यह कहती हुई चली गयी कि यशोदा का लाड़ला जो कुछ करे, वही थोड़ा है।

राग सारंग

कहै जनि ग्वारिनि! झूठी बात।
 कबहुँ नहिं मनमोहन मेरौ, धेनु चरावन जात॥
 बोलत है बतियाँ तुतरौहीं, चलि चरननि न सकात।
 केसैं करै माखन की चोरी, कत चोरी दधि खात॥
 देहीं लाइ तिलक केसरि कौ, जोबन-मद इतराति।
 सूरज दोष देति गोबिंद कौं, गुरु-लोगनि न लजाति॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं— (श्री यशोदा जी बोलीं—) 'गोपी! झूठी बात मत कह। मेरा मनमोहन (तो) कभी गायेँ चराने भी नहीं जाता। अभी तो तोतली वाणी बोलता है और पैरों से भली प्रकार चल भी नहीं पाता। यह मक्खन की चोरी कैसे करेगा? चोरी से यह दही क्यों खायेगा? तू अपने शरीर पर केसर का तिलक लगाकर जवानी के मद से इठला रही है, मेरे गोविन्द को दोष लगाती हुई अपने गुरुजनों (अपने से बड़ों अर्थात् मुझ से) भी संकोच नहीं करती?'

राग नटनारायन

मेरे लाड़िले हो! तुम जाउ न कहूँ।
 तेरेही काजैं गोपाल, सुनहु लाड़िले लाल,
 राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ॥
 काहे कौं पराएँ जाइ करत इते उपाइ,
 दूध-दही-घृत अरु माखन तहूँ।
 करति कछू न कानि, बकति हैं कटु बानि,
 निपट निलज बैन बिलखि सहूँ॥

ब्रज की ढीठी गुवारि, हाट की बेचनहारि,
सकुचै न देत गारि झगरत हूँ।
कहाँ लगि सहौं रिस, बकत भई हौं कृस,
इहिं मिस सूर स्याम-बदन चहूँ॥

व्याख्या: (माता ने कहा—) 'मेरे लाड़ले! तुम कहीं मत जाया करो। दुलारे लाल! सुनो। मेरे गोपाल! तुम्हारे लिए ही छहों रसों से भरे बर्तन मैंने सजा रखे हैं। दूसरे के घर जाकर तुम इतने उपाय क्यों करते हो? (अन्ततः) वहाँ भी (तो) दूध, दही, घी और मक्खन ही रहता है (तुम्हारे घर इनकी कमी थोड़े ही है)। ये गोपियाँ तो कुछ भी मर्यादा नहीं रखतीं, कठोर बातें बकती हैं, इनके अत्यन्त निर्लज्जताभरे बोल मैं कष्ट से सहती हूँ। ये ब्रज की गोपियाँ बड़ी ढीठ हैं, ये हैं ही बाजारों में (घूम-घूमकर) दही बेचनेवाली। ये गाली देने में और झगड़ा करने में भी संकोच नहीं करतीं। मैं कहाँ तक क्रोध को सहन करूँ, बकते-बकते (तुम्हें समझाते-समझाते) तो मैं दुबली हो गयी (थक गयी)!' सूरदासजी कहते हैं—यशोदा जी चाहती हैं कि (यदि श्याम सुन्दर घर-घर भटकना छोड़ दें तो) इसी बहाने लाल का श्रीमुख देखती रहूँ।

राग कान्हरी

इन अँखियनि आगैं तैं मोहन, एकौ पल जनि होहु नियारे।
हौं बलि गई, दरस देखैं बिनु, तलफत हैं नैननि के तारे॥
औरों सखा बुलाइ आपने, इहिं आगन खेलौ मेरे बारे।
निरखति रहौं फनिग की मनि ज्यौं, सुंदर बाल-बिनोद तिहारे॥
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, व्यंजन खाटे, मीठे, खारे।
सूर स्याम जोड़-जोड़ तुम चाहौ, सोड़-सोड़ माँगि लेहु मेरे बारे॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(माता कह रही हैं—) 'मोहन! मेरी इन आँखों के सामने से एक क्षण के लिए भी अलग (ओझल) मत हुआ करो। मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ, तुम्हारा दर्शन किये बिना मेरे नेत्रों की पुतलियाँ तड़पती ही रहती हैं। मेरे लाल! दूसरे सखाओं को

भी बुलाकर अपने इसी आँगन में खेलो। सर्प जैसे (अपनी) मणि को देखता रहता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारी सुन्दर बालक्रीड़ा को देखती रहूँ। मधु, मेवा, पकवान, मिठाई और खट्टे, मीठे, चरपरे-जो-जो भी व्यंजन श्याम सुन्दर! तुम्हें चाहिए, मेरे लाल! वही-वही तुम माँग लिया करो।'

राग धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि-बासर मोहि बहुत सतायौ, अब हरि हाथहिं आए॥
माखन-दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तौ घात परे हौ लालन, तुम्हें भलैं मैं चीन्ही॥
दोउ भुज पकरि कह्यौ, कहँ जैहौ, माखन लेउँ मँगाइ।
तेरी सौं मैं नेकु न खायौ, सखा गए सब खाइ॥
मुख तन चितै, बिहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ।
लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ॥

व्याख्या: (गोपी ने) चोरी करते कन्हाई को पकड़ लिया। (बोली-) 'श्याम! रात-दिन तुमने मुझे बहुत तंग किया, अब (मेरी) पकड़ में आये हो। मेरा सारा मक्खन और दही तुमने खा लिया, बहुत ऊधम किया; किंतु लाल! अब तो मेरे चंगुल में पड़ गये हो, तुम्हें मैं भली प्रकार पहचानती हूँ (कि तुम कैसे चातुर हो)।' (श्याम के) दोनों हाथ पकड़कर उसने कहा—'बताओ, (अब भागकर) कहाँ जाओगे? मैं सारा मक्खन (यशोदा जी से) मँगा लूँगी।' (तब श्याम सुन्दर बोले—) 'तेरी शपथ! मैंने थोड़ा भी नहीं खाया, सखा ही सब खा गये।' उसके मुख की ओर देखकर मोहन हँस पड़े, इससे उसका सब क्रोध शान्त हो गया। उस गोपी ने श्याम सुन्दर को हृदय से लगा लिया। इस शोभा (तथा चतुरता) पर सूरदास बलिहारी जाता है।

राग गौरी

कत हो कान्ह! काहु कैँ जाता।
ये सब ढीठ गरब गोरस कैँ, मुख संभारि बोलति नहिं बात॥

जोड़-जोड़ रुचै सोड़ तुम मोपै माँगि लेहु किन तात।
ज्यों-ज्यों बचन सुनों मुख अमृत, त्यों-त्यों सुख पावत सब गात॥
कैसी टेव पारी इन गोपिनि, उरहन कैं मिस आवति प्रात।
सुर सु कत हठि दोष लगावति, घरही कौ माखन नहिं खात॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(माता कह रही हैं—) श्याम! तुम क्यों किसी के यहाँ जाते हो? ये सब (गोपियाँ) तो गोरस (अपने दूध- दही) के गर्व में ढीठ (मतवाली) हो रही हैं, मुख सँभालकर बात नहीं कहतीं। मेरे लाल! तुम्हें जो-जो अच्छा लगे, वही-वही तुम मुझसे क्यों नहीं माँग लेते? मैं तो जैसे-जैसे तुम्हारे मुख की अमृतमयी वाणी सुनती हूँ, वैसे-वैसे मेरे सारे अङ्ग आनन्दित हो उठते हैं (तुम्हारे बार-बार माँगने से मैं खीझ नहीं सकती)। इन सब गोपियों को कैसी टेव (आदत) पड़ गयी है कि सवरे-सवरे उलाहना देने के बहाने आ जाती हैं। ये क्यों मेरे लाल को हठ करके दोष लगाती हैं, यह तो घर का ही मक्खन नहीं खाता।

घर गोरस जनि जाहु पराए।

दूध भात भोजन घृत अमृत, अरु आछौ करि दह्यौ जमाए॥

नव लख धेनु खरिक घर तेरैं, तू कत माखन खात पराए।

निलज ग्वालिनी देति उरहनौ, वै झूठें करि बचन बनाए॥

लघु-दीरघता कहू न जानैं, कहूँ बछरा कहूँ धेनु चराए।

सूरदास प्रभु मोहन नागर, हँसि-हँसि जननी कंठ लगाए॥

व्याख्या: (माता ने कहा—) 'लाल! (तुम्हारे) घर में ही (पर्याप्त) गोरस है, दूसरे के घर मत जाया करो। दूध-भात और घी का अमृततुल्य भोजन है तथा भली प्रकार (दूध गाढ़ा करके) दही जमाया है। तुम्हारे ही घर के गोष्ठ में नौ लाख गायें हैं, (फिर) तुम दूसरे के घर जाकर मक्खन क्यों खाते हो?' (श्याम बोले—) 'वे निर्लज्ज गोपियाँ गद्दी हुई बातें कहकर झूठ-मूठ उलाहना देती रहती हैं। वे बड़े-छोटे का भाव कुछ जानती नहीं, कहीं बछड़े और कहीं गायें चराती घूमती हैं।' सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी मोहन तो (परम) चतुर हैं, (उनकी बातें सुनकर) माता ने बार-बार हँसते हुए उन्हें गले लगा लिया।

राग बिलावल

(कान्ह कौं) ग्वालनि! दोष लगावति जोर।
 इतनक दधि-माखन कैं कारन कबहिं गयौ तेरी ओर॥
 तू तौ धन-जोबन की माती, नित उठि आवति भोर।
 लाल कुँअर मेरौ कछू न जानै, तू है तरुनि किसोर॥
 कापर नैन चढ़ाए डोलति, ब्रज में तिनुका तोर।
 सूरदास जसुदा अनखानी, यह जीवन-धन मोर॥

व्याख्या: (माता ने कहा—) 'गोपी! तू क्यों (कन्हैया को) हठपूर्वक दोष लगा रही है? इतने थोड़े-से मक्खन और दही के लिए वह कब तेरी ओर गया? तू तो अपनी सम्पत्ति और युवावस्था के कारण मतवाली हो रही है, प्रतिदिन सवेरे हो उठकर चली आती है। मेरा लाल तो बालक है, वह कुछ जानता ही नहीं; इधर तू नवयुवती है (तुझे ही यह सब धूर्तता आती है)। तू तिनका तोड़कर (निर्लज्ज होकर) ब्रज में किस पर आँखें चढ़ाये घूमती है?' सूरदास जी कहते हैं कि मैया यशोदा रुष्ट होकर बोलें—'यह तो मेरा जीवनधन है (समझी? अब चुपचाप चली जा)।'

राग गौरी

गए स्याम ग्वालनि-घर सूनै।
 माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूनै॥
 बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि कर्यौ दस टूक।
 सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं, हँसत चले दै कूक॥
 आइ गई ग्वालनि तिहिं आँसर, निकसत हरि धरि पाए।
 देखे घर-बासन सब फूटे, दूध-दही ढरकाए॥
 दोउ भुज धरि गाढ़ें करि लीन्हे, गई महरि कै आगैं।
 सूरदास अब बसै कौन ह्याँ, पति रहिहै ब्रज त्यागैं॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर (किसी) गोपी के सूने घर में गये। वहाँ मक्खन खाकर शेष सब गोरस (दूध-दही) गिरा दिया और बर्तनों को फोड़कर चूर-चूर कर दिया। बहुत दिनों का पुराना एक बड़ा मटका था,

उसके भी दस टुकड़े कर दिये। सोते हुए बालकों पर मट्टा छिड़ककर हँसते हुए किलकारी मारकर भाग चले। उसी समय वह गोपी आ गयी और घर से निकलते हुए श्याम उसकी पकड़ में आ गये। उसने देख लिया कि घर के सब बर्तन फूट गये हैं और दूध-दही दुलकाया हुआ है। दोनों हाथ उसने दृढ़ता से पकड़ लिया और ब्रजरानी के सामने (लेकर) गयी। सूरदास जी कहते हैं—(वहाँ जाकर बोली—) 'अब हम लोग किसके यहाँ जाकर बसें? हमारा सम्मान तो ब्रज छोड़ देने पर ही बचा रह सकता है।'

राग बिलावल

ऐसो हाल मेरें घर कीन्हौ, हाँ ल्याई तुम पास पकरि कै।
फोरि भाँड़ दधि माखन खायौ, उबर्यौ सो डार्यौ रिस करि कै॥
लारिका छिरकि मही सौं देखैं, उपज्यौं पूत सपूत महरि कै।
बड़ौ माट घर धर्यौ जुगनि कौ, टूक-टूक कियौ सखनि पकरि कै॥
पारि सपाट चले तब पाए, हाँ ल्याई तुमहीं पै धरि कै।
सूरदास प्रभु कौं यौं राखौ, ज्यौं राखिये गज मत्त जकरि कै॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(गोपी बोली—) 'मैं इसे तुम्हारे पास पकड़कर ले आयी हूँ—उसने मेरे घर ऐसी दशा कर दी है—(कि क्या कहूँ) बर्तन फोड़कर दही-मक्खन खा लिया; जो बचा, उसे क्रोध करके गिरा दिया; बालकों पर मट्टा छिड़ककर उनकी ओर (हँसता हुआ) देखता है। ब्रजरानी के ऐसा सुपूत (योग्य) पुत्र उत्पन्न हुआ है। मेरे घर में एक युगों का पुराना बड़ा मटका रखा था, सखाओं के साथ उसे पकड़कर (उठाकर) टुकड़े-टुकड़े कर दिया; सब कुछ बराबर (चौपट) करके जब सब-के-सब भाग चले, तब मुझे मिले और मैं पकड़कर (इन्हें) तुम्हारे ही पास ले आयी हूँ। अब इसे इस प्रकार बाँधकर रखो, जैसे मतवाले हाथी को जकड़कर रखा जाता है।'

राग कान्हरी

करत कान्ह ब्रज-घरनि अचगरी।

खीझति महरि कान्ह सौं, पुनि-पुनि उरहन लै आवति हैं सगरी॥

बड़े बाप के पूत कहावत, हम वै बास बसत इक बगरी।
 नंदहु तैं ये बड़े कहैहैं, फेरि बसैहैं यह ब्रज-नगरी॥
 जननी कैं खीझत हरि रोए, झूठहि मोहि लगावति धगरी।
 सूर स्याम-मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती हैं लँगरी॥

व्याख्या: कन्हाई ब्रज के घरों में ऊधम करते हैं, इससे ब्रजरानी कृष्णचन्द्र पर खीझ रही हैं—‘ये सभी बार-बार उलाहना लेकर आती हैं, तुम बड़े (सम्मानित) पिता के पुत्र कहलाते हो, हम और वे गोपियाँ एक स्थान में ही निवास करती हैं (उनसे रोज-रोज कहाँ तक झगड़ा किया जा सकता है) इधर ये (मेरे सुपुत्र) ऐसे हो गये हैं मानो ब्रजराज नन्द जी से भी बड़े कहलायेंगे और (सबको उजाड़कर) ब्रज की नगरी को ये फिर से बसायेंगे।’ माता के डाँटने पर श्याम सुन्दर रो पड़े (और बोले—) ‘ये कुलक्षणियाँ मुझे झूठा ही दोष लगाती हैं।’ सूरदास जी कहते हैं कि यशोदा जी ने श्याम का मुख पोंछा (और पुचकारकर) कहने लगीं—(लाल! रो मत।) ‘ये सब युवती गोपियाँ हैं ही झगड़ालू।’

राग नट

मेरी माई! कौन कौ दधि चोरै।
 मेरें बहुत दई कौ दीन्हों, लोग पियत हैं औरै॥
 कहा भयौ तेरे भवन गए जो, पियौ तनक लै भोरै।
 ता ऊपर काहैं गरजति है, मनु आई चढ़ि घोरै॥
 माखन खाइ, मह्यौ सब डारै, बहुरौ भाजन फोरै।
 सूरदास यह रसिक ग्वालिनी, नेह नवल सँग जोरै॥

व्याख्या: (ब्रजरानी कहती हैं—) ‘सखी! मेरा लाल किसका दही चुराता है? दैव का दिया हुआ मेरे घर ही बहुत (गोरस) है, दूसरे लोग ही उसे पीते-खाते हैं। हो क्या गया जो यह तुम्हारे घर गया और भोलेपन से थोड़ा-सा (दूध या दही) लेकर पी लिया। इतनी-सी बात पर गरजती क्यों हो? मानो घोड़े पर चढ़ी आयी हो।’ सूरदास जी कहते हैं—(वह ग्वालिनी बोली—) ‘मोहन मक्खन खा जाते हैं, सब मट्टा गिरा देते हैं

और फिर बर्तन भी फोड़ देते हैं, यह गोपी तो प्रेमिका है। (उलाहना देने के बहाने यह) उन अलबेले के साथ स्नेह का नाता जोड़ना चाहती है (यशोदा जी की फटकार इसे बुरी नहीं लगती!)।'

राग रामकली

अपनों गाउँ लेउ नंदरानी।

बड़े बाप की बेटी, पूतहि भली पढ़ावति बानी॥

सखा-भीर लै पैठत घर मैं, आपु खाइ तौ सहिए।

मैं जब चली सामुहैं पकरन, तब के गुन कहा कहिए॥

भाजि गए दुरि देखत कतहूँ, मैं घर पौढ़ी आइ।

हरैं-हरैं बेनी गहि पाछै, बाँधी पाटी लाइ॥

सुनु मैया, याके गुन मोसौं, इन मोहि लयो बुलाई।

दधि मैं पड़ी सेत की मोपै चींटी सबै कढ़ाई॥

टहल करत मैं याके घर की, यह पति सँग मिलि सोई।

सूर-बचन सुनि हँसी जसोदा, ग्वालि रही मुख गोई॥

व्याख्या: (गोपी बोली-) 'नन्दरानी! अपना गाँव सँभालो (हम किसी दूसरे गाँव में बसेंगी)। तुम तो बड़े (सम्मानित) पिता की पुत्री हो, सो पुत्र को अच्छी बात पढ़ा (सिखला) रही हो। वह स्वयं खा ले तो सहा भी जाय, सखाओं की भीड़ लेकर घर में घुसता है। जब मैं सामने से पकड़ने चली, तब के इसके गुण (उस समय की इसकी चेष्टा) क्या कहूँ। मेरे देखने में तो ये कहीं भागकर छिप गये, मैं घर लौटकर लेट गयी, सो धीरे-धीरे पीछे से मेरी चोटी पकड़कर पलंग की पाटी में लगाकर (फँसाकर) बाँध दी।' (यह सुनकर श्याम सुन्दर सरल बाल्यभाव से बोले-) 'मैया! इसके गुण मुझसे सुन, इसी ने मुझे बुलाया और दही में पड़ी सब चींटियाँ इसने बिना कुछ दिये ही मुझसे निकलवायीं। मैं तो इसके घर की सेवा (दही में से चींटी निकालने का काम) कर रहा था और यह जाकर अपने पति के पास सो गयी।' सूरदासजी कहते हैं कि श्याम की बात सुनकर यशोदा जी हँस पड़ीं और गोपी (लज्जा से) मुख छिपाकर रह गयी।

राग नटनारायन

लोगनि कहत झुकति तू बैरी।
 दधि-माखन गाँठी दै राखति, करत फिरत सुत चोरी॥
 जाके घर की हानि होति नित, सो नहिं आनि कहै री।
 जाति-पाँति के लोग न देखति और बसैहै नैरी॥
 घर-घर कान्ह खान कौं डोलत, बड़ी कृपन तू है री।
 सूर स्याम कौं जब जोड़ भावै, सोड़ तबहीं तू दै री॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(कोई गोपी ब्रजराज से कहती है—)
 ‘लोगों के कहने से तुम पगली होकर खीझती हो! अपना दही-मखन तो गाँठ बाँधकर (छिपाकर) रखती हो और पुत्र चोरी करता घूमता है। जिसके घर की प्रतिदिन हानि होती है, वह आकर कहेगा नहीं? अपने जाति-पाँति के लोगों को देखती नहीं हो (उनका संकोच न करके उन्हें डाँटती हो, वे गाँव छोड़कर चले जायेंगे तो) क्या दूसरे नये लोगों को बसाओगी? तुम तो बड़ी कृपण हो (तभी तो) कन्हाई भोजन के लिए घर-घर घूमता है। श्याम सुन्दर को जब जो रुचे, वही तुम उसे उसी समय दिया करो।’

राग मलार

महरि तैं बड़ी कृपन है माई।
 दूध-दही बहु बिधि कौ दीनौ, सुत सौं धरति छपाई॥
 बालक बहुत नहीं री तेरैं, एकै कुँवर कन्हाई।
 सोऊ तौ घरहीं घर डोलतु, माखन खात चोराई॥
 बृद्ध बयस पूरे पुन्यनि तैं, तैं बहुतै निधि पाई।
 ताहू के खैबै-पीबे कौं, कहा करति चतुराई॥
 सुनहु न बचन चतुर नागरि के जसुमति नंद सुनाई।
 सूर स्याम कौं चोरी कैं मिस, देखन है यह आई॥

व्याख्या: (गोपी ने कहा—) ‘सखी ब्रजरानी! तुम तो बड़ी कंजूस हो। दैव ने बहुत अधिक दूध-दही तुम्हें दिया है, उसे भी पुत्र से छिपाकर

रखती हो। सखी! तुम्हारे बहुत लड़के तो हैं नहीं, अकेला कुँअर कन्हैया ही तो है। वह भी तो घर-घर घूमता रहता है और चोरी करके मक्खन खाता है। बुढ़ापे की अवस्था में समस्त पुण्यों का फल पूरा (प्रकट) होने पर तो यह (कृष्ण रूपी) बहुमूल्य निधि तुमने पायी है, अब उसके भी खाने-पीने में चतुरता (कतर-ब्यौत) क्यों करती हो? सूरदास जी कहते हैं कि श्री यशोदा जी ने (यह बात सुनकर) श्री नन्द जी को सुनाकर यह बात कही—‘इस चतुर नारी की बातें तो सुनो, श्याम सुन्दर की चोरी का बहाना लेकर यह उसे देखने आयी है।’

राग नट

अनत सुत! गोरस कौं कत जात?
 घर सुरभी कारी-धौरी कौ माखन माँगि न खात॥
 दिन प्रति सबै उरहने कैँ मिस, आवति हैं उठि प्रात।
 अनलहते अपराध लगावति, बिकट बनावति बात॥
 निपट निसंक बिबादति सनमुख, सुनि-सुनि नंद रिसात।
 मोसौँ कहति कृपन तेरैं घर ढोटाहू न अघात॥
 करि मनुहारि उठाइ गोद लै, बरजति सुत कौ मात।
 सूर स्याम! चित सुनत उरहनौ, दुख पावत तेरौ तात॥

व्याख्या: (माता कहती हैं—) पुत्र! तुम दूसरों के यहाँ गोरस के लिए क्यों जाते हो? घर पर ही तुम्हारी कृष्णा और धवला गायों का मक्खन (बहुत) है, उसे माँगकर क्यों नहीं खा लिया करते? ये सब (गोपियाँ) प्रतिदिन सवेरे-सवेरे उलाहना देने के बहाने उठकर चली आती हैं। अनहोने दोष लगाती हैं, अद्भुत बातें बनाती (गढ़ लेती) हैं। ये सर्वथा निःशङ्क हैं, सामने होकर झगड़ा करती हैं, जिसे सुन-सुनकर ब्रजराज रोष करते हैं। मुझसे कहती हैं—‘तू कृपण है, तेरे घर तेरे पुत्र का भी पेट नहीं भरता।’ सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार माता पुत्र को उठाकर गोद में ले लेती हैं और उसकी मनुहार (विनती-खुशामद) करके रोकती हैं कि ‘श्याम सुन्दर! नित्य उलाहना सुनने से तुम्हारे पिता दुःख पाते (दुःखी होते) हैं।’

हरि सब भाजन फोरि पराने।
 हाँक देत पैठे दै पेला, नैकु न मनहिं डराने॥
 सींके छोरि, मारि लरिकनि कौं, माखन-दधि सब खाइ।
 भवन मच्यौ दधि-काँदौ, लरिकनि रोवत पाए जाइ॥
 सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरौ-सौ कहूँ नाहि।
 हाटनि-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ चलत नहीं, डरपाहिं॥
 रितु आए कौ खेल, कन्हैया सब दिन खेलत फाग।
 रोकि रहत गहि गली साँकरी, टेढ़ी बाँधत पाग॥
 बारे तैं सुत ये ढँग लाए, मनहीं-मनहिं सिहाति।
 सुनैं सूर ग्वालनि की बातें, सकुचि महरि पछिताति॥

व्याख्या: श्याम सुन्दर ललकारते हुए बलपूर्वक (गोपी के घर में) घुस गये, तनिक भी मन में डरे नहीं। छींके खोलकर (उनसे उतारकर) सब दही-मक्खन खाकर उस घर के लड़कों को पीटकर और सब बर्तन फोड़कर भाग गये। गोपी ने जाकर देखा कि घर में दही का कीचड़ हो रहा है, अपने लड़कों को उसने रोते पाया। (अब यशोदा जी के पास जाकर बोली-) 'सुनो! सुनो! लड़के तो सभी के हैं; किंतु तुम्हारे लड़के-जैसे तो कहीं नहीं हैं; उसके कारण बाजारों में, मुख्य मार्गों पर गलियों में-कहीं भी कोई चल नहीं पाता; सभी उससे डरते हैं। वसन्त-ऋतु आने पर फाग खेलना तो ठीक है; किंतु तुम्हारा कन्हैया तो सब समय होली खेलता है, तिरछी पगड़ी बाँधता है और पतली गलियों में (गोपियों को) पकड़कर रोक लेता है। बचपन से ही तुम्हारे पुत्र ने ये ढंग ग्रहण कर रखे हैं।' (यह कहती हुई भी वह) मन-ही-मन (श्याम के द्वारा छेड़े जाने के लिए) ललचा रही है। सूरदास जी कहते हैं कि गोपी की बातें सुनकर ब्रजरानी संकोच में पड़ गयी हैं और पछतावा कर रही हैं।

राग सारंग

कन्हैया! तू नहिं मोहि डरात।

षटरस धरे छाँड़ि कत पर-घर चोरी करि-करि खात॥

बकत-बकत तोसों पचि हारी, नैकुहुँ लाज न आई।
 ब्रज-परगन-सिक्कदार, महर, तू ताकी करत ननहई॥
 पूत सपूत भयौ कुल मेरैं, अब मैं जानी बात।
 सूर स्याम अब लौं तुहि बकस्यौ, तेरी जानी घात॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(माता ने डाँटा) 'कन्हैया! तू मुझसे डरता नहीं है? घर में रखे छहों रस छोड़कर तू दूसरे के घर चोरी करके क्यों खाता है? मैं तुझसे कहते-कहते प्रयत्न करके थक गयी; पर तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आयी? श्री वज्रराज इस ब्रज-परगने के सिक्केदार हैं (यहाँ उनका सिक्का चलता है), तू उनकी हेठी करता है? मैंने अब यह बात जान ली कि मेरे कुल में तू बड़ा योग्य पुत्र जन्मा है। श्याम! अब तक तो मैंने तुझे क्षमा कर दिया था, पर अब तेरे दाँव समझ गयी हूँ।'

राग गौरी

सुनु री ग्वारि! कहौं इक बात।
 मेरी सौ तुम याहि मारियौ, जबहीं पावौ घात॥
 अब मैं याहि जकरि बाँधौंगी, बहुतै मोहि खिझायौ।
 साटिनि मारि करौं पहुनाई, चितवत कान्ह डरायौ॥
 अजहूँ मानि, कह्यौ करि मेरौ, घर-घर तू जनि जाहि।
 सूर स्याम कह्यौ, कहूँ न जैहों, माता मुख तन चाहि॥

व्याख्या: (ब्रजरानी ने कहा—) 'गोपी! सुन, तुझसे एक बात कहती हूँ। तुम सबको मेरी शपथ है—जब भी अवसर पाओ, तुम इसे (अवश्य) मारना। इसने मुझे बहुत चिढ़ाया है, अब मैं इसे जकड़कर बाँध रखूँगी। छड़ियों से मारकर इसका आतिथ्य करूँगी।' (यों कहकर) श्रीकृष्ण की ओर देखते ही कृष्णचन्द्र डर गये। माता ने (उनसे कहा,) 'अब भी मान जा, मेरा कहना कर, तू घर-घर मत जाया कर।' सूरदास जी कहते हैं कि माता के मुख की ओर देखकर श्याम सुन्दर बोले—'मैया! मैं कहीं नहीं जाऊँगा।'

राग बिलावल

तेरैं लाल मेरौ माखन खायौ।

दुपहर दिवस जानि घर सूनों, ढूँढ़ि-ढँढ़ोरि आपही आयौ॥

खोलि किवार, पैठि मंदिर मैं, दूध-दही सब सखनि खवायौ।

ऊखल चढ़ि सींके कौ लीन्हौ, अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ॥

दिन प्रति हानि होति गोरस की, यह ढोटा कौनैं ढंग लायौ।

सूर स्याम कौं हटकि न राखै, तैं ही पूत अनोखौ जायौ॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(एक गोपी उलाहना देती है—) 'तुम्हारे लाल ने मेरा मक्खन खाया है। दिन में दोपहर के समय घर को सुनसान समझकर स्वयं ढूँढ़-ढाँढ़कर इसने स्वयं खाया (अकेले ही खा लेता तो कोई बात नहीं थी)। किंवाड़ खोलकर, घर में घुसकर सारा दूध-दही इसने सखाओं को खिला दिया। ऊखल पर चढ़कर छींके पर रखा गोरस भी ले लिया और जो अच्छा नहीं लगा, उसे पृथ्वी पर ढुलका दिया। प्रतिदिन इसी प्रकार गोरस की बरबादी हो रही है, तुमने अपने इस पुत्र को किस ढंग पर लगा दिया। श्याम सुन्दर को मना करके घर क्यों नहीं रखती हो। क्या तुमने ही अनोखा पुत्र उत्पन्न किया है?

राग रामकली

माखन खात पराए घर कौ।

नित प्रति सहस मथानी मथिये, मेघ-सब्द दधि-माट-घमरकौ॥

कितने अहिर जियत मेरैं घर, दधि मथि लै बेंचत महि मरकौ।

नव लख धेनु दुहत हैं नित प्रति, बड़ौ नाम है नंद महर कौ॥

ताके पूत कहावत हौ तुम, चोरी करत उधारत फरकौ।

सूर स्याम कितनौ तुम खैहौ, दधि-मक्खन मेरैं जहँ-तहँ ढरकौ॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं—(माता समझाती हैं—) 'तुम दूसरे के घर का मक्खन खाते हो! (तुम्हारे घर में) प्रतिदिन सहस्रों मथानियों से दही मथा जाता है, दही के मटकों से जो घरघराहट निकलती है, वह मेघगर्जना के समान होती है। कितने ही अहीर मेरे घर जीते

(पालन-पोषण) पाते हैं, दही मथकर वे मट्टे के मटके बेच लेते हैं। ब्रजराज श्री नन्द जी का बड़ा नाम है, उनके यहाँ प्रतिदिन नौ लाख गायें दुही जाती हैं। उनके तुम पुत्र कहलाते हो और चोरी करके छप्पर उजाड़ते (अपने घर की कंगाली प्रकट करते) हो। श्याम सुन्दर! तुम कितना खाओगे, दही-मक्खन तो मेरे घर जहाँ-तहाँ ढुलकता फिरता है।

राग बिलावल

तेरी सौं सुन-सुन मेरी मैया!

आवत उबटि पत्थौ ता ऊपर, मारन कौं दौरी इक गैया॥

ब्यानी गाइ बछरुवा चाटति, हौं पय पियत पतूखिनि लैया।

यहै देखि मोकौं बिजुकानी, भाजि चल्थौ कहि दैया-दैया॥

दोउ सींग बिच है हौं आयौ, जहाँ न कोऊ ही रखवैया।

तेरौ पुन्य सहाय भयौ है, उबत्थौ बाबा नंद दुहैया॥

याके चरित कहा कोउ जानै, बूझौ धौं संकर्षन भैया।

सूरदास स्वामी की जननी, उर लगाइ हँसि लेति बलैया॥

व्याख्या: (मोहन भोलेपन से बोले-) 'मेरी मैया! सुन, सुन; तेरी शपथ (सच कह रहा हूँ) घर आते समय एक ऊबड़-खाबड़ मार्ग में जा पड़ा और उस पर एक गाय मुझे मारने दौड़ी। गाय व्यायी हुई थी और अपने बछड़े को चाट रही थी, मैं छोटे दोने में दुहकर उसका धारोष्ण दूध पी रहा था। यही देखकर वह मुझसे भड़क गयी, मैं 'दैया रे! दैया रे' कहकर भाग पड़ा। जहाँ पर कोई भी रक्षा करने वाला नहीं था, वहाँ मैं उसके दोनों सींगों के बीच में पड़कर बच आया! मैं नन्द बाबा की दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि आज तेरा पुण्य ही मेरा सहायक बना है।' सूरदास जी कहते हैं कि मेरे इन स्वामी की लीला कोई क्या समझ सकता है, चाहे इसके बड़े भाई बलराम जी से पूछ लो (वे भी कहेंगे कि इनकी लीला अद्भुत है)। माता तो मोहन को हृदय से लगाकर उनकी बलैया ले रही हैं।

राग गौरी

हौं लगि नैकु चलौ नंदरानी!
मेरे सिर की नई बहनियाँ, लै गोरस में सानी॥
हमै-तुम्है रिस-बैर कहाँ कौ, आनि दिखावत ज्यानी।
देखौ आइ पूत कौ करतब, दूध मिलावत पानी॥
या ब्रज कौ बसिबौ हम छाड़्यौ, सो अपनैं जिय जानी।
सूरदास ऊसर की बरषा थोरे जल उतरानी॥

व्याख्या: (एक गोपी कहती है—) 'नन्दरानी! तनिक वहाँ तक चलो! मेरे मस्तक पर की नयी गगरी लेकर (तुम्हारे लाल ने) गोरस से लथपथ कर दी। हमारे और तुम्हारे में किस बात की खीझ या शत्रुता है जो अपनी हानि (स्वयं) कर तुम्हें दिखायेंगी। तुम आकर अपने पुत्र के करतब देख लो कि हम (कहाँ तक) दूध में पानी मिलाती हैं (झूठ बोलती हैं)। अपने मन में हमने यह समझ लिया कि इस ब्रज में बसना हमें छोड़ना ही पड़ेगा।' सूरदास जी कहते हैं कि यह तो ऊसर पर हुई वर्षा के समान है, जहाँ थोड़ा-सा जल पड़ते ही पानी छलकने लगता है। अर्थात् थोड़ी-सी सम्पत्ति या श्याम सुन्दर की थोड़ी-सी बाल-विनोद की कृपा पाकर ही यह ओछी गोपी अपनी सीमा से बाहर होकर इतराने लगी है।

राग बिलावल

सुनि-सुनि री तैं महरि जसोदा! तैं सुत बड़ौ लगायौ।
इहिं ढोटा लै ग्वाल भवन में, कछु बिथर्यौ कछु खायौ॥
काकैं नहीं अनौखौ ढोटा, किहिं न कठिन करि जायौ।
मैं हूँ अपनैं औरस पूतै बहुत दिननि मैं पायौ॥
तैं जु गँवारि! पकरि भुज याकी, बदन दह्यौ लपटायौ।
सूरदास ग्वालनि अति झूठी, बरबस कान्ह बँधायौ॥

व्याख्या: (गोपी कहती है—) 'सुनो, सुनो, ब्रजरानी यशोदा! तुमने अपने पुत्र को बहुत दुलारा (जिससे यह बिगड़ गया) है। (तुम्हारे)

इस बालक ने गोप बालकों को (साथ) लेकर तथा (मेरे) भवन में जाकर वहाँ कुछ गोरस ढुलकाया तथा कुछ खाया। किसका बालक अनोखा (निराला) नहीं होता, किसने बड़े कष्ट से उसे उत्पन्न नहीं किया है, मैंने भी तो अपने गर्भ से (यह) पुत्र बहुत दिनों पर पाया है (अर्थात् मेरे भी तो बड़ी अवस्था में पुत्र हुआ; किंतु इतना अनर्थ तो वह भी नहीं करता)।' सूरदास जी कहते हैं—(ब्रजरानी ने उसे उलटे डाँटा—) 'तू भी गँवार (झगड़ालू) है, इस मेरे लाल का हाथ पकड़कर तूने ही इसके मुख में दही लिपटा दिया है। ये गोपियाँ अत्यन्त झूठ बोलने वाली हैं। झूठ-मूठ ही इन्होंने कन्हाई को बँधवा दिया।'

राग नट

नंद-घरनि! सुत भलौ पढ़ायौ।

ब्रज-बीथिनि, पुर-गलिनि, घरै-घर, घाट-बाट सब सोर मचायौ॥

लरिकनि मारि भजत काहू के, काहू कौ दधि-दूध लुटायौ।

काहू कैँ घर करत भँड़ाई, मैं ज्यों-त्यों करि पकरन पायौ॥

अब तौ इन्हें जकरि धरि बाँधौ, इहिं सब तुम्हारौ गाउँ भजायो।

सूर स्याम-भुज गहि नंदरानी, बहुरि कान्ह अपनैँ ढँग लायौ॥

व्याख्या: (गोपी कहती है—) 'नन्दरानी! तुमने पुत्र को अच्छी शिक्षा दी है। ब्रज की गलियों में, नगर के मार्गों में, घर-घर में, घाटों पर, कच्चे रास्तों में—सब कहीं उसने हल्ला (ऊधम) मचा रखा है। किसी के लड़कों को मारकर भाग जाता है, किसी का दूध-दही लुटा देता है, किसी के घर में घुसकर ढूँढ़-ढाँढ़ करता है, जैसे-तैसे करके मैं इसे पकड़ सकी हूँ। अब तो इसे जकड़कर बाँध रखो, इसने तुम्हारे सारे गाँव को भगा दिया (इसी के ऊधम से तंग होकर सब लोग गाँव छोड़कर जाने लगे)।' सूरदास जी कहते हैं कि श्री नन्दरानी ने श्याम सुन्दर का हाथ पकड़ लिया; किंतु कन्हाई तो फिर अपने ही ढंग में लग गये (पूर्ववत् ऊधम करते रहे)।

राग गौरी

ऐसी रिस मैं जो धरि पाऊँ।
 कैसे हाल करौ धरि हरि के, तुम कौं प्रगट दिखाऊँ॥
 सँटिया लिए हाथ नँदरानी, थरथरात रिस गात।
 मारे बिना आजु जौ छाँड़ौं, लागे मेरें तात॥
 इहि अंतर ग्वारिनि इक औरै, धरे बाँह हरि ल्यावति।
 भली महरि सूधौ सुत जायौ, चोली-हार बतावति॥
 रिस मैं रिस अतिहीं उपजाई, जानि जननि-अभिलाष।
 सूर-स्याम-भुज गहे जसोदा, अब बाँधौं कहि माष॥

व्याख्या: (मैया यशोदा कहती हैं—) 'ऐसे क्रोध में यदि पकड़ पाऊँ तो श्याम को पकड़कर कैसी गति बनाती हूँ, यह तुमको प्रत्यक्ष दिखला दूँ।' श्रीनन्दरानी हाथ में छड़ी लिये हैं, क्रोध से उनका शरीर थर-थर काँप रहा है। (अर्थात् मेरा बाप थोड़े ही लगता है जो मारे बिना छोड़ दूँ)। इसी समय एक दूसरी गोपी हाथ पकड़कर श्याम सुन्दर को ले आ रही थी। (आकर) उसने अपनी (फटी) चोली और (टूटा) हार दिखाकर कहा—'ब्रजरानी! तुम (स्वयं बहुत) भली हो और तुमने पुत्र (भी बहुत) सीधा उत्पन्न किया है।' (इस प्रकार श्याम ने) माता की (अपना क्रोध प्रकट करने की) इच्छा जानकर उनके क्रोध की दशा में और भी क्रोध उत्पन्न कर दिया। (क्रोध बढ़ने का निमित्त उपस्थित कर दिया)। सूरदास जी कहते हैं कि यशोदा जी ने श्याम सुन्दर का हाथ पकड़ लिया और क्रोध से कहा—'अब तुझे बाँध दूँगी।'

राग सोरठ

जसुमति रिस करि-करि रजु करषै।
 सुत हित क्रोध देखि माता कै, मन-हीं-मन हरि हरषै॥
 उफनत छीर जननि करि ब्याकुल, इहिं बिधि भुजा छुड़ायौ।
 भाजन फोरि दही सब डार्यौ, माखन-कीच मचायौ॥

लै आई जेंवरि अब बाँधौं, गरब जानि न बँधायौ।
 अंगुर द्वै घटि होति सबनि सौं, पुनि-पुनि और मँगायौ॥
 नारद-साप भए जमलार्जुन, तिन कौं अब जु उधारौं।
 सूरदास-प्रभु कहत भक्त हित जनम-जनम तनु धारौं॥

व्याख्या: यशोदा जी क्रोध करके बार-बार रस्सी खींच रही हैं। अपने पुत्र की भलाई (उसके सुधार) के लिए माता का क्रोध देखकर श्याम मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे हैं। उफनते दूध के बहाने माता को व्याकुल करके मोहन ने हाथ छुड़ा लिया और बर्तन फोड़कर सारा दही दुलका दिया तथा मक्खन (भूमि पर गिराकर) उसकी कीच मचा दी। (इससे और रुष्ट होकर माता) रस्सी ले आयी कि 'अब तुम्हें बाँधती हूँ'; किंतु (बाँधने का) गर्व समझकर बन्धन में नहीं आये। (माता ने) बार-बार और रस्सियाँ मँगायीं; किंतु सभी दो अंगुल छोटी ही पड़ जाती थीं। सूरदास जी कहते हैं—मेरे प्रभु (मन-ही-मन) कहने लगे—'देवर्षि नारद जी के शाप से (कुबेर के पुत्र) यमलार्जुन (सटे हुए अर्जुन के दो वृक्ष) हो गये हैं, इनका अब उद्धार कर दूँ; क्योंकि मैं तो भक्तों के लिए ही बार-बार अवतार लेकर शरीर धारण करता हूँ।'

राग रामकली

जसोदा! एतौ कहा रिसानी।
 कहा भयौ जौ अपने सुत पै, महि ढरि परी मथानी?
 रोषहिं रोष भरे दृग तेरे, फिरत पलक पर पानी।
 मनहुँ सरद के कमल-कोष पर मधुकर मीन सकानी॥
 स्त्रम-जल किंचित निरखि बदन पर, यह छबि अति मन मानी।
 मनौ चंद नव उमंगि सुधा भुव ऊपर बरषा ठानी॥
 गृह-गृह गोकुल दई दाँवरी, बाँधति भुज नंदरानी।
 आपु बँधावत, भक्तनि छोरत, बंद बिदित भई बानी॥
 गुन लघु चरचि करति स्त्रम जितनौ, निरखि बदल मुसुकानी।
 सिथिल अंग सब देखि सूर-प्रभु-सोभा-सिंधु तिरानी॥

व्याख्या: (गोपी कहती है—) 'यशोदा जी! इतना क्रोध तुमने क्यों किया है? हो क्या गया जो अपने पुत्र से दही मथने का मटका भूमि पर लुढ़क गया? (देखो तो) क्रोध-ही-क्रोध में तुम्हारे नेत्र डबडबा आये हैं, पलकों पर आँसू उमड़ने लगा है; ऐसा लगता है मानो शरद्-ऋतु में खिले कमल के कोष पर भौरों को देखकर मछली (वहाँ पहुँचकर) संदेह में पड़ गयी हो (कि कोष पर जाय या जल में लौट जाय)। तुम्हारे मुख पर पसीने की कुछ बूँदें दीखने लगी हैं, यह छटा तो मन को बहुत ही भाती है, मानो नवीन उमंग से उमड़कर चन्द्रमा ने पृथ्वी पर अमृत की वर्षा प्रारम्भ कर दी हो।' गोकुल के घर-घर ने रस्सी दी और नन्दरानी श्याम के हाथ बाँध रही है; (इससे) वेदों में भी यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि (दयामय) अपने-आपको बन्धन में डालकर भी भक्तों को मुक्त करते हैं। रस्सियों को छोटी समझकर उन्हें जोड़ने-खींचने (से) माता जो श्रम करती हैं, उसके कारण उनके मुख को देखकर गोपी मुसकरा उठी। सूरदास जी कहते हैं कि माता का सारा शरीर शिथिल (थका हुआ) दीखने लगा है; मानो मेरे प्रभु की शोभा के समुद्र में वे (थरकर) तैर रही हों।

राग सारंग

बाँधों आजु, कौन तोहि छोरै।

बहुत लँगरई कीन्ही मोसौं, भुज गहि रजु ऊखल सौं जोरै॥
जननी अति रिस जानि बाँधायौ, निरखि बदन, लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रज-जुवतीं सब धाई, कहतिं कान्ह अब क्यौं नहिं छोरै॥
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा, मारन कौं साँटी कर तोरै।
साँटी देखि ग्वालि पछितानी, बिकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै॥
सुनहु महरि! ऐसी न बूझिऐ, सूत बाँछति माखन-दधि थोरै।
सूर स्याम कौं बहुत सतायौ, चूक परी हम तैं यह भोरै॥

व्याख्या: (माता कहती है—) 'आज तुझे बाँध (ही) दूँगी, देखती हूँ कौन खोलता है। मेरे साथ बहुत ऊधम तूने किया।' यह कहकर

हाथ पकड़कर (उसे) रस्सी के द्वारा ऊखल से बाँध रही हैं। माता को अत्यन्त क्रोधित देखकर मोहन ने अपने को बाँधवा लिया और माता के मुख की ओर देखकर आँखों से आँसू ढुलकाने लगे। यह सुनकर (कि माता ने श्याम को बाँध दिया) ब्रज की सब युवतियाँ दौड़ी आयीं और कहने लगीं—‘अब कन्हाई को छोड़ क्यों नहीं देती।’ (किंतु) यशोदाजी तो ऊखल से उन्हें बाँधकर मारने के लिए हाथ से छड़ी तोड़ रही हैं। छड़ी देखकर गोपियों को (अपने उलाहना देने का) बड़ा पश्चात्ताप हुआ (श्याम के पीटे जीने की सम्भावना से व्याकुल होकर उन्होंने जहाँ-तहाँ अपना मुख छिपा लिया)। सूरदास जी कहते हैं—(वे सब बोलीं—) ‘ब्रजरानी! ऐसा तुम्हें नहीं करना चाहिए कि थोड़े-से मक्खन और दही के लिये तुमने पुत्र को बाँध दिया। श्याम सुन्दर को तुमने बहुत त्रास दिया, यह तो भोलेपन के कारण हम लोगों से भूल हो गयी (जो उलाहना दिया)।’

राग आसावरी

जाहु चली अपनै-अपनै घर।

तुमहिं सबनि मिलि ढीठ करायौ, अब आई छोरन बर॥

मोहिं अपने बाबा की सौहैं, कान्हहि अब न पत्याऊँ।

भवन जाहु अपनै-अपनै सब, लागति हौं मैं पाउँ॥

मोकौं जनि बरजौ जुवती कोउ, देखौ हरि के ख्याल।

सूर स्याम सौं कहति जसोदा, बड़े नंद के लाल॥

व्याख्या: (श्री ब्रजरानी कहती हैं—) ‘सब अपने-अपने घर चली जाओ! तुम्हीं सबने मिलकर तो इसे ढीठ बना दिया है और अब भली बनकर छोड़ने आयी हो। मुझे अपने पिता की शपथ, अब मैं कन्हाई का विश्वास नहीं करूँगी। मैं तुम सबके पैरों पड़ती हूँ, अब अपने-अपने घर चली जाओ! कोई युवती मुझे मना मत करो, सब कोई श्याम की चपलता देखो।’ सूरदास जी कहते हैं कि (व्यङ्ग से) यशोदा जी श्याम सुन्दर से कह रही हैं—‘तुम सम्मानित ब्रजराज के दुलारे हो न?’ (तात्पर्य यह कि पिता के बल पर ऊधम करते थे, अब देखती हूँ कि पिता तुम्हें कैसे छुड़ाते हैं।)

राग सोरठ

जसुदा! तेरौ मुख हरि जोवै।
 कमलनैन हरि हिचिकिनि रोवै, बंधन छोरि जसोवै॥
 जौ तेरौ सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोखि कौ जायौ।
 कहा भयौ जौ घर कैं ढोटा, चोरी माखन खायौ॥
 कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ, जाख न पूजन पायौ।
 तिहिं घर देव-पितर काहे कौं, जा घर कान्हर आयौ॥
 जाकौ नाम लेत भ्रम छूटे, कर्म-फंद सब काटै।
 सोई इहाँ जेवरी बाँधे, जननि साँटि लै डाँटै॥
 दुखित जानि दोउ सुत कुबेर के ऊखल आपु बँधायौ।
 सूरदास-प्रभु भक्त हेत ही देह धारि कै आयौ॥

व्याख्या: (गोपियाँ कहती हैं—) 'यशोदाजी! श्याम तुम्हारा ही मुख देख रहा है। कमल लोचन मोहन हिचकी ले-लेकर रो रहा है। यशोदाजी! (झटपट इसका) बन्धन खोल दो। यदि तुम्हारा पुत्र सचमुच ऊधमी है, तो भी वह उत्पन्न तो हुआ है तुम्हारे ही पेट से न? क्या हो गया जो घर के लड़के ने चोरी से मक्खन खा लिया (देखो तो मैंने ही) कोरी मटकी में दही जमाया था, कुल-देवता भी पूजने नहीं पायी थीं (कि इसने जूठा कर दिया, पर मैं क्या क्रोध करती हूँ? अरे) उस घर में किसके देवता और किसके पितर, जिस घर में कन्हैया आ गया, जिसका नाम लेने से अज्ञान दूर हो जाता है। जो कर्म के जाल को काट देता है। उसी को माता ने रस्सी ने बाँध दिया है और ऊपर से छड़ी लेकर डाँट रही है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे प्रभु तो भक्तों के लिए ही शरीर धारण करके संसार में आये हैं; उन्होंने कुबेर के दोनों पुत्रों को दुःखी समझकर (उनके उद्धार के लिये) अपने को ऊखल से बँधवा लिया है।

राग बिहारगौ

देखौ माई! कान्ह हिलकियनि रोवै।
 इतनक मुख माखन लपटान्यौ, डरनि आँसुवनि धोवै॥

माखन लागि उलूखत बाँध्यौ, सकल लोग ब्रज जोवै।
निरखि कुरुखन उन बालनि की दिस, लाजनि अँखियनि गोवै॥
ग्वाल कहैं धनि जननि हमारी, सुकर सुरभि नित नोवै।
बरबस हीं बैठारि गोद में, धारैं बदन निचोवै॥
ग्वालि कहैं या गोरस कारन, कत सुत की पति खोवै?
आनि देहिं अपने घर तैं हम, चाहति जितौ जसोवै॥
जब-जब बंधन छोख्यौ चाहतिं, सूर कहै यह को वै।
मन माधौ तन, चित गोरस में, इहिं बिधि महरि बिलोवै॥

व्याख्या: (गोपियाँ कहती हैं—) 'देखो तो सखी, कन्हाई हिचकी ले-लेकर रो रहा है। छोटे-से मुख में मक्खन लिपटा है, जिसे भय के कारण आँसुओं से धो रहा है।' मक्खन के कारण ऊखल से बाँधा गया मोहन ब्रज के सब लोगों की ओर देख रहा है। फिर उन गोपियों की ओर कठोर दृष्टि से देखकर वह लज्जा से आँखें छिपा रहा है। गोप- बालक कहते हैं—'हमारी माताएँ धन्य हैं, जो प्रतिदिन अपने हाथों ही गायों को नोती (उनके पिछले पैरों में रस्सी बाँधती) हैं, फिर आग्रह पूर्वक पकड़कर हमें गोद में बैठाकर हमारे मुख में (दूध की) धार निचोड़ती (दुहती) हैं।' गोपियाँ कहती हैं—'इस गोरस के लिए तुम पुत्र का सम्मान क्यों नष्ट करती हो? यशोदा जी! तुम जितना चाहती हो (बताओ) हम अपने घरों से लाकर दे दें।' सूरदास जी कहते हैं कि जब-जब (कोई गोपी) बन्धन खोलना चाहती है, तभी ब्रजरानी कहती हैं—'यह कौन है?' ब्रजेश्वरी इस प्रकार दधि-मन्थन कर रही हैं कि उनका मन तो श्याम सुन्दर की ओर है और ध्यान गोरस में लगा है।

राग सारंग

(माई) नैकुहूँ न दरद करति, हिलकिनि हरि रोवै।
बज्रहु तैं कठिनु हियौ, तेरौ है जसोवै॥
पलना पौढ़ाइ जिन्हैं बिकट बाउ काटै।
उलटे भुज बाँधि तिन्है लकुट लिये डाँटै॥

नैकुहूँ न थकत पानि, निरदई अहीरी।
 अहो नंदरानि, सीख कौन पै लही री॥
 जाकों सिव-सनकादिक सदा रहत लोभा।
 सूरदास-प्रभु कौ मुख निरखि देखि सोभा॥

व्याख्या: (एक गोपी कहती है-) 'सखी! तनिक भी पीड़ा का तुम अनुभव नहीं करती हो? (देखो तो) श्याम हिचकी ले-लेकर रो रहा है। यशोदा जी! तुम्हारा हृदय तो वज्र से भी कठोर है। जिसे पलने पर लिटा देने पर भी तीव्र वायु से कष्ट होता है, उसी को हाथ उलटे करके बाँधकर तुम छड़ी लेकर डाँट रही हो? तुम्हारा हाथ तनिक भी थकता नहीं? (सचमुच तुम) दयाहीन अहीरिन ही हो। अरी नन्दरानी! यह (कठोरता की) शिक्षा तुमने किससे पायी है?' सूरदास जी कहते हैं कि मेरे जिस प्रभु का दर्शन पाने के लिए शंकर जी तथा सनकादि ऋषि भी सदा ललचाते रहते हैं। (माता!) तुम उनके मुख की शोभा को एक बार भली प्रकार देखो तो सही! (फिर तुम्हारा क्रोध स्वयं नष्ट हो जायेगा।)

राग केदारौ

हरि के बदन तन धौं चाहि।
 तनक दधि कारन जसोदा इतौ कहा रिसाहि॥
 लकुट कैं डर डरत ऐसैं सजल सोभित डोल।
 नील-नीरज-दल मनौ अलि-अंसकनि कृत लोल॥
 बात बस समृनाल जैसैं प्रात पंकज-कोस।
 नमित मुख इमि अघर सूचत, सकुच मैं कछु रोस॥
 कतिक गोरस-हानि, जाकों करति है अपमान।
 सूर ऐसे बदन ऊपर वारिए तन-प्राण॥

व्याख्या: सूरदास जी कहते हैं- (गोपी समझा रही है-) 'श्याम के मुख की ओर तो देखो। यशोदा जी! तनिक-से दही के लिए इतना क्रोध क्यों करती हो? तुम्हारी छड़ी के भय से भीत इसके अश्रुभरे नेत्र

ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे भौरों के बच्चों द्वारा चंचल किये नीलकमल के दल हों। जैसे सवेरे के समय नालसहित कमलकोष वायु के झोंके से झुक गया हो, उसी प्रकार इसका मुख झुका हुआ है और इसके ओष्ठों से संकोच के साथ कुछ क्रोध प्रकट होता है। गोरस की इतनी कितनी हानि हो गयी, जिसके लिए मोहन का अपमान करती हो। ऐसे सुन्दर मुख पर तो शरीर और प्राण भी न्योछावर कर देना चाहिए।'

मुख-छबि देखि हो नंद-घरनि!

सरद-निसि कौ अंसु अगनित इंदु-आभा-हरनि॥

ललित श्री गोपाल-लोचन लोल आँसू-ढरनि।

मनहुँ बारिज बिथकि बिभ्रम, परे परबस परनि॥

कनक मनिमय जटित कुंडल-जोति जगमग करनि।

मित्र मोचन मनहुँ आए, तरल गति द्वै तरनि॥

कुटिल कुंतल, मधुप मिलि मनु, कियो चाहत लरनि।

बदन-कांति बिलोकि सोभा सकै सूर न बरनि॥

व्याख्या: (गोपी कहती है—) नन्दरानी! (अपने लाल के) मुख की शोभा तो देखो, यह तो शरद की रात्रि के अगणित किरणों वाले चन्द्रमाओं की छटा को भी हरण कर रहा है। श्री गोपाल के सुन्दर (एवं) चंचल नेत्रों से आँसुओं का ढुलकना ऐसा (भला) लगता है मानो कमल (कोश) में क्रीड़ा से अत्यन्त थककर भौरों विवश गिरे पड़ते हों। मणिजटित स्वर्णमय कुण्डलों की कान्ति इस प्रकार जगमग कर रही है, जैसे अपने मित्र (कमल) को छुड़ाने के लिए दो चंचल गति वाले सूर्य उतर आये हों। घुँघराली अलकें तो ऐसी लगती हैं मानो भ्रमरों का समूह एकत्र होकर युद्ध करना चाहता है।' सूरदास जी कहते हैं कि यह मुख की कान्ति देखकर (जो कि देखने ही योग्य है) उसकी शोभा का वर्णन मैं नहीं कर पाता।

मुख-छबि कहा कहौ बनाइ।

निरखि निसि-पति बदन-सोभा, गयौ गगन दुराइ॥

अमृत अति मनु पिवन आए, आइ रहे लुभाइ।
 निकसि सर तैं मीन मानौ, लरत कीर छुराइ॥
 कनक-कुंडल स्रवन बिभ्रम कुमुद निसि सकुचाइ।
 सूर हरि की निरखि सोभा कोटि काम लजाइ॥

व्याख्या: इस मुख की शोभा का क्या बनाकर (उपमा देकर) वर्णन करूँ। इसकी छटा को देखकर चन्द्रमा (लज्जा से) आकाश में छिप गया है। (अलकें ऐसी लगती हैं मानो) भौरों का झुंड अमृत पीने आया था और आकर लुब्ध हो रहा है। (नेत्रों के मध्य में नासिका ऐसी है मानो) सरोवर से निकलकर दो मछलियाँ लड़ रही थीं, एक तोता उन्हें अलग करने बीच में आ बैठा है। कानों में सोने के कुण्डलों की शोभा को देखकर रात्रि में फूलनेवाले कुमुद के पुष्प भी संकुचित होते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम सुन्दर की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो रहे हैं।

हरि-मुख देखि हो नँद-नारि।
 महरि! ऐसे सुभग सुत सौं, इतौ कोह निवारि॥
 सरद मंजुल जलज लोचन लोल चितवनि दीन।
 मनहुँ खेलत हैं परस्पर मकरध्वज द्वै मीन॥
 ललित कन-संजुत कपोलनि लसम कज्जल-अंक।
 मनहुँ राजत रजनि, पूरन कलापति सकलंक॥
 बेगि बंधन छोरि, तन-मन वारि, लै हिय लाइ।
 नवल स्याम किसोर ऊपर, सूर जन बलि जाइ॥

व्याख्या: (गोपी कहती है—) 'नन्दरानी! श्याम के मुख की ओर तो देखा। ब्रजरानी! ऐसे मनोहर पुत्र पर इतना क्रोध करना छोड़ दो। शरत्कालीन (पूर्ण विकसित) सुन्दर कमल के समान इसके चंचल नेत्र इस प्रकार दीन (भंयातुर) होकर देख रहे हैं, मानो कामदेव की दो मछलियाँ परस्पर खेल रही हों। सुन्दर कपोलों पर मक्खन के कणों के साथ (आँसू के साथ नेत्रों से आये) काजल के धब्बे ऐसे शोभित हैं, मानो रात्रि में अपनी कालिमा के साथ पूर्ण चन्द्रमा शोभित हो। झटपट

बन्धन खोलकर, तन-मन इस पर न्योछावर करके इसे हृदय से लगा लो।' सूरदास जी कहते हैं कि नवल किशोर श्याम सुन्दर यह सेवक बार-बार न्योछावर होता है।

पद बिलावल

चरन कमल बंदौ हरि राई।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, आंधर कों सब कछु दरसाई॥

बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई।

सूरदास स्वामी करुणामय, बार-बार बंदौ तेहि पाई॥

व्याख्या: जिस पर श्रीहरि की कृपा हो जाती है, उसके लिए असंभव भी संभव हो जाता है। लूला-लंगड़ा मनुष्य पर्वत को भी लांघ जाता है। अंधे को गुप्त और प्रकट सब कुछ देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। बहरा सुनने लगता है। गूंगा बोलने लगता है। कंगाल राज-छत्र धारण कर लेता है। ऐसे करुणामय प्रभु की पद-वन्दना कौन अभागा न करेगा।

बिलावल

अबिगत गति कछु कहति न आवै।

ज्यों गूंगो मीठे फल की रस अन्तर्गत ही भावै॥

परम स्वादु सबहीं जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।

मन बानी कों अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥

रूप रैख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।

सब बिधि अगम बिचारहिं, तातों सूर सगुन लीला पद गावै॥

व्याख्या: यहां अव्यक्तोपासना की देहाभिमानियों के लिए क्लिष्ट बताया है। निराकार निर्गुण ब्रह्म का चिंतन अनिर्वचनीय है। वह मन और वाणी का विषय नहीं। गूंगे को मिठाई खिला दी जाय और उससे उसका स्वाद पूछा जाय, तो वह कैसे बतला सकता है, वह रसानन्द तो उसका अन्तर ही जानता है। अव्यक्त ब्रह्म का न रूप है, न रेख,

न गुण है, न जाति। मन वहां स्थिर ही नहीं हो सकता। सब प्रकार से वह अगम्य है, अतः सूरदास सगुण ब्रह्म श्रीकृष्ण की लीलाओं का ही गायन करना ठीक समझते हैं।

धनाश्री

प्रभु, मेरे औगुन न विचारौ।

यदि जिय लाज सरन आये को रबि-सुत-त्रास निबारौ॥
जो गिरिपति मसि धोरि 'उदधि' में लै सुरतरु निज हाथ।
ममकृत दोष लिखे बसुधा भरि तऊ नहीं मिति नाथ॥
कपटी कुटिल कुचालि कुदरसन अपराधी, मतिहीन।
तुमहि समान और नहिं दूजो जाहिं भजौं है दीन॥
जोग जग्य जप तप नहिं कीन्हौं, बेद बिमल नहिं भाख्यौ।
अति रस लुब्ध स्वान जूठनि ज्यो अनतै ही मन राख्यौ॥
जिहिं-जिहिं जोनि फिरौं संकट बस, तिहिं तिहिं यहै कमायो।
काम क्रोध मद लोभ ग्रसित है विषै परम विष खायौ॥
अखिल अनंत दयालु दयानिधि अधमोचन सुखरासि।
भजन प्रताप नाहिंने जान्यौं, बंध्यौ काल की फांसि॥
तुम सर्वग्य सबै बिधि समरथ, असरन सरन मुरारि।
मोह समुद्र सूर बूझत है, लीजै भुजा पसारि॥

व्याख्या: जीव के अपराधों का अन्त नहीं। अपराधों की तरफ देखकर यदि न्याय किया गया, तब तो उद्धार पाने की कोई आशा नहीं। 'शरणागत' को भगवान् तार देते हैं, इस न्याय पर ही सूर का उद्धार भवसागर से होना चाहिए।

सारंग

प्रभु, हौं सब पतितन कौ राजा।

परनिंदा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा॥
तृस्ना देसरु सुभट मनोरथ, इंद्रिय खड्ग हमारे।
मंत्री काम कुमत दैबे कों, क्रोध रहत प्रतिहारे॥

गज अहंकार चढ्यौ दिगविजयी, लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत संगति को मेरी, ऐसो हौं मैं ईस॥
मौह मदै बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार।
सूर, पाप कौ गढ दृढ़ कीने, मुहकम लाय किंवारा॥

व्याख्या: यहां बड़े पापी की राजा से तुलना की गई है। परनिन्दा ही राजमहल के द्वार पर नौबत का बजना है। तृष्णा पतितेश का देश है। अनेक मनोरथ योद्धा हैं। इन्द्रियां तलवार का काम देती हैं। काम कुमन्त्री है और क्रोध है द्वारपाल। अहंकार दिग्विजय कराने में साथी है। सिर पर लोभ का राज छत्र है। दुष्टों की संगति सेना है। ऐसे नरेश की विरुदावली का गान मोह मदादि कर रहे हैं।

भक्तिवाद में दीनता ही दीनबन्धु की शरण में ले जाती है।

बिलावल

अब कै माधव, मोहिं उधारि।

मगन हौं भव अम्बुनिधि में, कृपासिन्धु मुरारि॥

नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग।

लियें जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग॥

मीन इन्द्रिय अतिहि काटति, मोट अघ सिर भार।

पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिबार॥

काम क्रोध समेत तृष्णा, पवन अति झकझोर।

नाहिं चितवन देत तियसुत नाम-नौका ओर॥

थक्यौ बीच बेहाल बिह्वल, सुनह करुनामूल।

स्याम, भुज गहि काढ़ि डारहु, सूर ब्रज के कूल॥

व्याख्या: संसार-सागर में माया अगाध जल है, लोभ की लहरें हैं, काम वासना का मगर है, इन्द्रियां मछलियां हैं और इस जीवन के सिर पर पापों की गठरी रखी हुई है। इस समुद्र में मोह सवार है। काम-क्रोधादि की वायु झकझोर रही है। तब एक हरि नाम की नौका ही पार लगा सकती है, पर-स्त्री तथा पुत्र का माया-मोह उधर देखने ही नहीं देता। भगवान ही हाथ पकड़कर पार लगा सकते हैं।

देवगंधार

मोहि प्रभु, तुमसों होड़ परी।
 ना जानौं करिहौ जु कहा तुम, नागर नवल हरी॥
 पतित समूहनि उद्वरिबै कों तुम अब जक पकरी।
 मैं तो राजिवनैननि दुरि गयो पार पहार दरी॥
 एक अधार साधु संगति कौ, रचि पचि के संचरी।
 भई न सोचि सोचि जिय राखी, अपनी घरनि घरी।
 मेरी मुकति बिचारत हौ प्रभु, पूछत पहर घरी।
 स्त्रम तैं तुम्हें पसीना ऐहैं, कत यह जकनि करी॥
 सूरदास बिनती कहा बिनवै, दोषहिं देह भरी।
 अपनो बिरद संभारहुगै तब, या में सब निनुरी॥

व्याख्या: 'तुम सों होड़ परी' तुम्हारा नाम 'पतितोद्धारक' है, पर मुझे इसका विश्वास नहीं। आज जांचने आया हूँ, कि तुम कहां तक पतितों का उद्धार करते हो। तुमने उद्धार करने का हठ पकड़ रखा है, तो मैंने पाप करने का सत्याग्रह ठान रखा है। इस बाजी में देखना है कौन जीतता है।

'मैं तो राजिव...दरी' तुम्हारे कमलदल जैसे नेत्रों की दृष्टि बचाकर मैं पाप-पहाड़ की गुफा में छिपकर बैठ गया हूँ।

धनाश्री

अब हों नाच्यौ बहुत गोपाल।
 काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
 महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
 भ्रम भर्यौ मन भयौ पखावज, चलत कुसंगति चाल॥
 तृसना नाद करति घट अन्तर, नानाविध दै ताल।
 माया कौ कटि फैंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल॥
 कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
 सूरदास की सबै अविद्या, दूर करौ नंदलाल॥

व्याख्या: संसार के प्रवृत्ति मार्ग पर भटकते-भटकते जीव अन्त में प्रभु से कहता है, तुम्हारी आज्ञा से बहुत नाच मैंने नाच लिया। अब इस प्रवृत्ति से मुझे छुटकारा दे दो, मेरा सारा अज्ञान दूर कर दो।

वह नृत्य कैसा? काम-क्रोध के वस्त्र पहने। विषय की माला पहनी। अज्ञान के घुंघरू बजे। परनिंदा का मधुर गान गाया। भ्रमभरे मन ने मृदंग का काम दिया। तृष्णा ने स्वर भरा और ताल तद्रूप दिये। माया का फेंटा कस लिया था। माथे पर लोभ का तिलक लगा दिया था। तुम्हें रिझाने के लिए न जाने कितने स्वांग रचे। कहाँ-कहाँ नाचना पड़ा, किस-किस योनि में चक्कर लगाना पड़ा। न तो स्थान का स्मरण है, न समय का। किसी तरह अब तो रीझ जाओ, नंदनंदन।

बिलावल

कब तुम मोसो पतित उधारो।

पतितनि में विख्यात पतित हौं पावन नाम तिहारो॥

बड़े पतित पासंगहुं नहीं, अजमिल कौन बिचारो।

भाजै नरक नाम सुनि मेरो, जमनि दियो हठि तारो॥

छुद्र पतित तुम तारि रमापति, जिय जु करौ जनि गारो।

सूर, पतित कों ठौर कहूं नहिं, है हरि नाम सहारो॥

व्याख्या: जो पुण्य करता है, वह स्वर्ग पद पाता है। मैंने कोई पुण्य नहीं किया, इससे स्वर्ग जाने का तो मेरा अधिकार है नहीं। अब रह गया नरक। मगर नरक भी मेरे महान् पापों को देखकर डर गया है। वहाँ भी प्रवेश नहीं। अब कहाँ जाऊँ। अब तो, नाथ, तुम्हारे चरणों का ही अवलम्ब है, सो वहीं थोड़ी-सी जगह कृपा कर दे दो।

धनाश्री

अपन जान मैं बहुत करी।

कौन भांति हरि कृपा तुम्हारी, सो स्वामी, समुझी न परी॥

दूरि गयौ दरसन के ताई, व्यापक प्रभुता सब बिसरी।

मनसा बाचा कर्म अगोचर, सो मूरति नहिं नैन धरी॥

गुन बिनु गुनी, सुरूप रूप बिनु नाम बिना श्री स्याम हरी।
कृपासिंधु अपराध अपरिमित, छमौ सूर तैं सब बिगरी॥

व्याख्या: जीव मानता है कि अपनी शक्ति पर प्रभु प्राप्ति की उसने अनेक साधनाएँ की, पर अन्त में यह उसकी भ्रांत धारणा ही निकली। प्रभु तो सर्वत्र व्यापक है पर यह कहां-कहां उसके दर्शन को भटकता फिरा। समझ में न आया कि वह निर्गुण होते हुए भी सगुण है, निराकार होते हुए भी साकार है। अज्ञान में अपराध हुए भी ज्ञानाभिमान के द्वारा भी कम अपराध नहीं हुए। सो अब तो बिगड़ी हुई बात क्षमा मांगने से ही बनेगी।

सारंग

आछो गात अकारथ गार्यो।
करी न प्रीति कमललोचन सों, जनम जनम ज्यों हार्यो॥
निसिदिन विषय बिलासिन बिलसत फूटि गई तुअ चार्यो।
अब लाग्यो पछितान पाय दुख दीन ई कौ मार्यो॥
कामी कृपन कुचील कुदरसन, को न कृपा करि तार्यो।
तातें कहत दयालु देव पुनि, काहै सूर बिसार्यो॥

व्याख्या: 'जनम...हार्यो' = प्रत्येक जन्म में व्यर्थ ही सुन्दर शरीर नष्ट कर दिया। नर शरीर पाकर भी हरि का भजन करते न बना। जिस शरीर को 'मोक्ष का द्वार' कहा है, उसे भी विषय-भोगों में नष्ट कर दिया। पर भक्त को प्रभु की कृपा का अब भी भरोसा है। हरि की कृपा ने बड़े-बड़े कामी, कृपण, मलिन और कुरूपों को भव-सागर से तार दिया। लेकिन सूर को तो इस नियम में भी अपवाद प्रतीत होता है। न जाने, उस दयालु ने सूर को क्यों गिरा दिया!

कान्हरा

सोइ रसना जो हरिगुन गावै।
नैननि की छवि यहै चतुरता जो मकुंद मकरंदहिं धावै॥

निर्मल चित तौ सोई सांचो कृष्ण बिना जिहिं और न भावै।
 स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि कथा सुधारस प्यावै॥
 कर तैई जै स्यामहिं सेवैं, चरननि चलि बृन्दावन जावै।
 सूरदास, जै यै बलि ताको, जो हरिजू सों प्रीति बढ़ावै॥

व्याख्या: 'हरि-परायण' होने में ही हरेक इंद्रिय की सार्थकता है, यही इस पद का सार है।

'नैननि की...घावे' = नेत्रों को अप्रकट रूप से यहां भ्रमर बनाया गया है। उसी नैनरूपी मधुकर के सफल जीवन हैं, जो मुकुंदरूपी मकरंद अर्थात् कृष्ण-छवि पराग का पान करने के लिए दौड़ते हैं।

सारंग

माधवजू, जो जन तैं बिगरै।
 तउ कृपाल करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय घर॥
 जैसैं जननि जठर अन्तरगत, सुत अपराध करै।
 तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै॥
 जद्यपि मलय बृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै।
 तऊ सुभाव सुगन्ध सुशीतल, रिपु तन ताप हरै॥
 धर विघांसि नल करत किरसि हल बारि बांज बिघरै।
 सहि सनमुख तउ सीत उष्ण कों सोई सफल करै॥
 रसना द्विज दलि दुखित होति बहु, तउ रिस कहा करै।
 छमि सब लोभ जु छांडि छवौ रस लै समीप संचरै॥
 करुना करन दयाल दयानिधि निज भय दीन डर।
 इहिं कलिकाल व्याल मुख ग्रासित सूर सरन उबरै॥

व्याख्या: जीव के प्रति भगवान् की असीम करुणाशीलता है। कितना ही कोई अपराध करे, करुणामय हरि उसे क्षमा ही करते हैं। बच्चा कितने भी अपराध करे, माता तो उसे छाती से लगाकर प्यार ही करेगी। मलयागिर कुठाराघात करने वाले के शरीर को भी शीतलता देगा। धरती को हल से जोतते हैं, उसे विदीर्ण करते हैं, फिर भी वह दुःखों को

झेलकर सुन्दर फल देती है। जीभ की भी यही बात है। सदा दांतों तले दबी रहती है, पर कभी दांतों पर क्रोध नहीं करती। छहों रसों का स्वाद उनको चखाती है। ऐसे ही ईश्वर अपनों के अज्ञानावस्था में किये अपराधों को क्षमा कर देता है।

कान्हरा

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महापतित कबहूँ नहिं आयौ, नेकु तिहारे काज॥
माया सबल धाम धन बनिता, बांध्यौ हौं इहिं साज।
देखत सुनत सबै जानत हौ, तऊ न आयौ बाज॥
कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी आवाज।
दई न जाति खेवट उतराई, चाहत चढ्यौ जहाज॥
लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत, प्रभु तुम हौ सदा गरीब निवाज॥

व्याख्या: इस पद में भक्त ने भगवान् के आगे अपना हृदय खोलकर रख दिया है। कहता है तुम्हें अपने विरद की लाज रखनी हो, तो तार ही दो। पूछो, तो मैं आज तक तुम्हारे काम नहीं आया। इस प्रबल माया अकोन, कामिनी-कांचन के बंधन में बहुत बुरी तरह से जकड़ा हूँ। देवता हूँ, सुनता हूँ और सब जानता हूँ, पर जो नहीं करना चाहिए, वही करता चला जाता हूँ। पर यह विश्वास है, कि तुम पतितोद्धारक हो। यद्यपि मैं पार उतराई नहीं देना चाहता हूँ, तो भी नाव पर चढ़ना चाहता हूँ। तुमसे कोई नई बात करने को नहीं कहता। तुम भी सदा से पतितों को पार उतारने आये हो। तुम गरीब-निवाज हो, तो मुझ गरीब को भी पार लगा दो।

‘नेकु तिहारे काज’, ‘तऊ न आयौ बाज’, ‘दई न जाति...जहाज’, ‘नई न करन कहत’ आदि की बड़ी सुन्दर और मुहावरेदार भाषा है।

अहंकार को भगवान् की अगाध करुणा में डुबो देने की ओर इस पद में संकेत किया गया है।

रामकली

सरन गये को को न उबार्यौ।

जब-जब भीर परीं संतति पै, चक्र सुदरसन तहां संभार्यौ॥

महाप्रसाद भयौ अंबरीष कों, दुरवासा को क्रोध निवार्यौ।

ग्वालनि हैत धर्यौ गोवर्धन, प्रगट इन्द्र कौ गर्व प्रहार्यौ॥

कृपा हरी प्रह्लाद भक्त पै, खम्भे फारि हिरनाकुस मार्यौ।

नरहरि रूप धर्यौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदार्यौ॥

ग्राह-ग्रसित गज कों जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टार्यौ।

सूर स्याम बिनु और करै को, रंगभूमि में कंस पछार्यौ॥

व्याख्या: जो भी भगवान् की शरण में गया, उसने अभय पद पाया। यद्यपि भगवान् का न कोई मित्र है, न कोई शत्रु, तो भी सत्य और असत्य की मर्यादा की रक्षा के लिए, अजन्मा होते हुए भी वह 'रक्षक' और 'भक्षक' के रूप धारण करते हैं। प्रतिज्ञा भी यही है।

नट

जौलौ सत्य स्वरूप न सूझत।

तौलौ मनु मनि कंठ बिसारै, फिरतु सकल बन बूझत॥

अपनो हौं मुख मलिन मंदमति, देखत दरपन माहिं।

ता कालिमा मेटिबै कारन, पचतु पखारतु छाहिं॥

तेल तूल पावक पुट भरि धरि, बनै न दिया प्रकासत।

कहत बनाय दीप की बातें, कैसे कैं तम नासत॥

सूरदास, जब यह मति आई, वै दिन गये अलेखे।

यह जानै दिनकर की महिमा, अंध नयन बिनु देखे॥

व्याख्या: 'सत्य स्वरूप' अपनी आत्मा का वास्तविक रूप। असत् शरीर को ही अविद्यावश 'आत्मा' मान लिया गया है। वह तो सनातन सत्य है।

'तौलों...बूझत' मणि-माला गलें में ही पहने हैं, पर भ्रमवश इधर-उधर खोजता फिरता है। आत्मा तो अन्तर में ही है, पर उसे हम जगह-जगह खोजते फिरते हैं।

‘अपनी...छाहिं’ मुंह में तो अपना काला है, पर वह मूर्ख शीशे में कालिमा समझ रहा है, उस शीशे को बार-बार साफ कर रहा है। असदज्ञान के साधन भी असत् ही होते हैं।

जब तक जीवात्मा को स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ, उसे ‘सत्’ ‘असत्’ का विवेक प्राप्त नहीं हो सकता।

लारंग

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।

छूटि गये कैसे जन जीवै, ज्यों प्राणी बिनु प्रान॥

जैसे नाद-मगन बन सारंग, बधै बधिक तनु बान।

ज्यों चितवै ससि ओर चकोरी, देखत हीं सुख मान॥

जैसे कमल होत परिफुल्लित, देखत प्रियतम भान।

सूरदास, प्रभु हरिगुन त्योंही सुनियतु नितप्रति कान॥

व्याख्या: यह अनन्यता का वर्णन है। यह ‘तन्मयता’ से प्राप्त होता है। बिना प्राण के जैसे ‘प्राणी’ शब्द निरर्थक हैं, वैसे ही भगवद्भक्ति-रहित जीवन व्यर्थ है।

मृग का राग-प्रेम, चकोर का चन्द्र-प्रेम और कमल का सूर्य प्रेम प्रसिद्ध है। जीव को इसी प्रकार भगवत्प्रेम में तन्मय हो जाना चाहिए।

कल्याण

धोखें ही धोखें डहकायौ।

समुझि न परी विषय रस गीध्यौ, हरि हीरा घर मांझ गंवायौ॥

ज्यों कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई, दसौं दिसि धायौ।

जनम-जनम बहु करम किये हैं, तिन में आपुन आपु बंधायौ॥

ज्यों सुक सेमर-फल आसा लगि निसिबासर हठि चित्त लगायौ।

रीतो पर्यौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयो तूल, तांबरो आयौ॥

ज्यों कपि डोरि बांधि बाजीगर कन-कन कों चौहटें नचायौ।

सूरदास, भगवंत भजन बिनु काल ब्याल पै आपु खवायौ॥

व्याख्या: क्षणिक विषय-रसों में आनन्द मानकर यह जीव आत्मानन्द से विमुख रह गया। धोखे में ठगाया गया। 'हरि-हीरा' को अंतर में खोकर जीवनभर विषय-रस में भूला रहा। कालरूपी सर्प खा गया।

'ज्यों सुक...आयौ', तोता सेमर के फल में रात-दिन आशा लगाये बैठा रहा, कि कब पकता है। अन्त में पका जानकर चोंच मारी तो अंदर से केवल रुई निकली। इससे किसकी भूख बुझी है? विषय-सुखों का परिणाम सारहीन ही है।

अन्त में, जब काल-ब्याल के मुख में पड़ गया, तब पछताने से क्या होगा?

नट

कहावत ऐसे दानी दानि।

चारि पदारथ दिये सुदामहिं, अरु गुरु को सुत आनि॥

रावन के दस मस्तक छेद, सर हति सारंगपानि।

लंका राज विभीषन दीनों पूरबली पहिचानि॥

मित्र सुदामा कियो अचानक प्रीति पुरातन जानि।

सूरदास सों कहा निठुरई, नैननि हूं की हानि॥

व्याख्या: 'कहावत...दानि' ऐसे दानी आज 'दानी' के नाम से प्रसिद्ध हैं; राम और कृष्ण को लोग बड़ा दानी कहते हैं। पर उन्होंने कोई निःस्वार्थ दान तो दिया नहीं। अकारण दान करते, तो दानी अवश्य कहे जाते। फिर भी वे आज 'दानी' के नाम से पुकारे जाते हैं।

'चारि...सुदामहिं' सुदामा और श्रीकृष्ण उज्जैन में गुरु सांदीपन के गुरुकुल में पढ़ते थे। सुदामा ने वहां कभी कृष्ण को कोई कष्ट नहीं होने दिया। यदि द्वारिकाधीश ने तब उसे मालामाल कर दिया होता, तो कौन-सी बड़ी बात थी। प्रत्युपकार ही होना था। विभीषण ने घर के सारे भेद राम को बतला दिये थे, उन्होंने उसे लंका का राज्य सौंप दिया। फिर भी राम और कृष्ण आदर्श दानी कहे जाते हैं। कुछ हो, सूर के साथ तो निठुराई का ही व्यवहार किया, नेत्रों से भी हीन कर दिया।

देवगंधार

मेरो मन अनत कहां सचु पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज प आवै॥
कमलनैन कौ छांड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परमगंग कों छांड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल खावै।
सूरदास, प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

व्याख्या: यहां भक्त की भगवान् ने प्रति अनन्यता की ऊंची अवस्था दिखाई गई है। जीवात्मा परमात्मा की अंश-स्वरूपा है। उसका विश्रान्ति-स्थल परमात्मा ही है, अन्यत्र उसे सच्ची सुख-शान्ति मिलने की नहीं। प्रभु को छोड़कर जो इधर-उधर सुख खोजता है, वह मूढ़ है। कमल-रसास्वादी भ्रमर भला करील का कड़वा फल चखेगा? कामधेनु छोड़कर बकरी को कौन मूर्ख दुहेगा?

नट

प्रभु मेरे औगुन चित न धरौ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, अपने पनहिं करौ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भये, सूरसरि नाम परौ॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत, सूरस्याम, झगरौ।
अब की बेर मोहिं पार उतारौ, नहिं पन जात तरौ॥

व्याख्या: भगवान् समदर्शी हैं। ब्राह्मण और चांडाल को वह एक दृष्टि से देखते हैं। जीव अपनी स्वयं की शक्ति से कुछ नहीं कर सकता, पुरुषार्थ तो परमात्मा का ही है। यदि वह जीव के अपराधों पर ध्यान देगा, तब तो न्याय हो चुका! तब उसकी समदर्शिता कहां रह जायेगी।

केदारा

है हरि नाम कौ आधार।
 और इहिं कलिकाल नाहिंन रह्यौ बिधि-ब्यौहार॥
 नारदादि सुकादि संकर कियौ यहै विचार।
 सकल स्तुति दधि मथत पायौ इतौई घृत-सार॥
 दसहुं दिसि गुन कर्म रोक्क्यौ मीन कों ज्यों जार।
 सूर, हरि कौ भजन करतहिं गयौ मिटि भव-सागर॥

व्याख्या: 'हरि-भजन' ही मुक्ति का सर्वोत्कृष्ट और तत्काल फलदायक साधन है। इसलिए 'सब तज, हरि भज' ही मुख्य है।

सारंग

रे मन, राम सों करि हेत।
 हरिभजन की बारि करिलै, उबरै तेरो खेत॥
 मन सुवा, तन पीजरा, तिहि मांझ राखौ चेत।
 काल फिरत बिलार तनु धरि, अब धरी तिहिं लेत॥
 सकल विषय-विकार तजि तू उतरि सागर-सेत।
 सूर, भजु गोविन्द-गुन तू गुर बताये देत॥

व्याख्या: यह जीवन क्षेत्र है, पर क्षणस्थायी है। इसकी यदि रखवाली करनी है, इसे सार्थक बनाना है, तो भगवान् का भजन किया कर। काल से मुक्ति पाने का हरि-भजन ही अमोघ उपाय है। काल किसी का लिहाज नहीं करता। विषयों से मोह हटाकर गोविन्द का गुण-गान करने से ही तू संसार-सागर पार कर सकेगा, अन्यथा नहीं।

सारंग

जापर दीनानाथ ढरै।
 सोई कुलीन, बड़ो सुंदर सोइ, जिहिं पर कृपा करै॥
 राजा कौन बड़ो रावन तें, गर्वहिं गर्व गरै।
 कौन विभीषन रंक निसाचर, हरि हंसि छत्र धरै॥

रंकव कौन सुदामाहू तें, आपु समान करै।
 अघम कौन है अजामील तें, जम तहं जात डरै॥
 कौन बिरक्त अधिक नारद ते, निसि दिन भ्रमत फिरै।
 अधिक कुरूप कौन कुबिजा तें, हरि पति पाइ तरै॥
 अधिक सुरूप कौन सीता तें, जनम वियोग भरै।
 जोगी कौन बड़ी संकर तें, ताकों काम छरै॥
 यह गति मति जानै नहिं कोऊ, किहिं रस रसिक ढरे।
 सूरदास, भगवन्त भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरै॥

व्याख्या: भगवान् की लीला के अन्दर क्या-क्या रहस्य भरे पड़े हैं, कोई समझ नहीं सकता। कोई एक सिद्धान्त देखने में नहीं आता। बड़े-बड़े उच्चकुलीनों का पतन हो गया और नीच कहे जाने वाले पार हो गये। विभीषण को लंका का राज दे दिया, और रावण का गर्व धूल में मिला दिया। भिखारी सुदामा को द्वारकाधीश कृष्ण ने अपनी बराबरी का बना लिया। योगिराज नारद दर-दर घूमते फिरे। कुरूपा कुब्जा कृष्ण को पसन्द आ गई, जबकि सीता को जीवनभर वियोग भोगना पड़ा। शंकर जैसे महान् योगी को कामदेव ने छलना चाहा। ये सब विपरीत बातें हुईं। भगवान् के प्रसन्न होने का कहाँ सिद्धान्त स्थिर किया जाय?

बिलावल

मन तोसो कोटिक बार कही।
 समुझि न चरन गहे गोविन्द के, उर अघ-सूल सही॥
 सुमिरन ध्यान कथा हरिजू की, यह एकौ न रही।
 लोभी लंपट विषयनि सों हित, यों तेरी निबही॥
 छांड़ि कनक मनि रत्न अमोलक, कांच की किरच गही।
 ऐसो तू है चतुर बिबेकी, पय तजि पियत मही॥
 ब्रह्मादिक रुद्रादिक रबिससि देखे सुर सबहीं।
 सूरदास, भगवन्त-भजन बिनु, सुख तिहु लोक नहीं॥

व्याख्या: बहुत समझाने पर भी यह मन वास्तविक तत्त्व को समझा ही नहीं। विषय-सुखों से ही मित्रता जोड़ी। उन जैसों के साथ ही इसकी बनी। भगवद्-भजन न किया। कांचन और रत्न को छोड़कर अभागे ने कांच के टुकड़े पसन्द किये। दूध फेंककर मट्ठा पिया!

सारांश यह कि विषयों में स्थायी आनन्द नहीं है। वह तो विवेकपूर्वक किये हुए हरि-भजन में ही है।

बिहाग

भजु मन चरन संकट-हरन।

सनक, संकर ध्यान लावत, सहज असरन-सरन॥

सेस, सारद, कहैं नारद संत-चिन्तत चरन।

पद-पराग-प्रताप दुर्लभ, रमा के हित-करन॥

परसि गंगा भई पावन, तिहूँ पुर-उद्धरन।

चित्त चेतन करत, अन्तसकरन-तारन-तरन॥

गये तरि ले नाम कैसे, संत हरिपुर-धरन।

प्रगट महिमा कहत बनति न गोपि-डर-आभरन॥

जासु सुचि मकरन्द पोवत मिटति जिय की जरन।

सूर, प्रभु चरनाबिन्द तें नसै जन्म रु मरन॥

व्याख्या: 'परसि गंगा...ऊद्धरन' पुराणों में कहा गया है कि जब वामन भगवान् ने राजा बलि से दान में प्राप्त पृथ्वी को अपने पैर से नापा, तब अंगूठे के लगने से हिमालय से गंगा की उत्पत्ति हुई। इसी से 'गंगा-जल' को हरि-चरणोदक मानते हैं।

धनाश्री

सुत-मुख देखि जसोदा फूली।

हरषित देखि दूध की दंतुली, प्रेम-मगन तन की सुधि भूली॥

बाहिर तें तब नन्द बुलाए, देखौं धौ सुन्दर सुखदाई।

तनक-तनक-सी दूध-दंतुलियां, देखौं नैन सफल करौं आई॥

आनंद सहित महर तब आये, मुख चितवत दोउ नैन अघाई।

सूर स्याम किलकत द्विज देखे, मानो कमल पर बिज्जु जमाई॥

व्याख्या: 'मानो कमल पर बिज्जु जमाई', मानो मुख-कमल पर दन्त-रूपी दामिनी जड़ी हुई है।

दूध की दंतुलियां निकल जाने पर माता को कितनी प्रसन्नता होती है।

धनाश्री

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।

मनिमय कनक नंद के आंगन, बिंब पकरिबे धावत॥

कबहुं निरखि आपु छांह कों, कर सों पकरन चाहत।

किलकि हंसत राजति द्वै दंतियां पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत॥

कनकभूमि पर कर पग छाया, यह उपमा इक राजत।

करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजत॥

बालदसा सुख निरखि जसोदा पुनि-पुनि नंद बुलावति।

अंचरा तर लै ढांकि सूर प्रभु, जननी दूध पियावति॥

व्याख्या: 'कनक-भूमि...साजत', सुवर्ण की धरती पर कृष्ण के हाथ-पैरों की परछाई पड़ रही है, मानो पृथ्वी कृष्ण के प्रत्येक चरण की मूर्ति बनाकर अपनी कमल की बैठक सजा रही है।

“इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो, कमल की बैठक, दूसरा, कमल से बैठक सजा रही है। पृथ्वी अपनी कमल की बैठक सजा रही है, अर्थात् अपना 'सरोज-सदन' सजा रही है। दूसरे अर्थ में, पृथ्वी कृष्ण के चरणों की प्रतिमा बनाती और हाथों के कमलों से अपनी बैठक सजाती है। पहले अर्थ में अधिक चमत्कार है, किन्तु दूसरा अर्थ अधिक स्पष्ट है।”

देवगंधार

सिखवति चलन जसोदा मैया।

अरबराइ कै पानि गहावति, डगमगाइ धरनी धरै पैया॥

कबहुं सुन्दर बदन बिलोकति उर आनंद भरि लेति बलैया।

कबहुं कुल-देवता मनावति, चिर जीवहु मेरो कुंवर कन्हैया॥

कबहुंक बलकों टरि बुलावति, इहिं आंगर खेलौ दोउ भैया।
सूरदास, स्वामी की लीला अति प्रताप बिलसत नंदरैया॥

व्याख्या: दो डग आगे रखकर नंदनंदन जब अड़बड़ाकर गिरने लगते हैं, तब यशोदा अपना हाथ पकड़कर फिर चलाने लगती हैं। बार-बार सुन्दर मुख देखती और बलैया लेती हैं। जब अपने-आप थोड़ा-सा चलने लगते हैं, तब बलराम को पुकारकर बुलाती और कहती हैं, “देखो, तुम्हारा भैया कैसा खेलता है, आओ, दोनों भाई यहीं आंगन में खेलो।”

रामकली

मैया, कबहिं बढैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई, यह अजहूं है छोटी॥
तू तो कहति बल की बैनी ज्यों है है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हावत ओछत नागिनि-सी भुईं लोटी॥
काचो दूध पिवावति पचि-पचि, देति न माखन रोटी।
सूर, स्याम चिरजीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी॥

व्याख्या: ‘काचो...रोटी’, मैया, तू मुझे कच्चा दूध पिलाती है, वह भी राजी से नहीं। मक्खन-रोटी तू मुझे देती नहीं। दाऊ को देती है। हां, इसीलिए उनकी चोटी लंबी और मोटी है।

रामकली

मेरो माई, हठी बालगोबिन्दा।
अपने कर गहि गगन बतावत, खेलन कों मांगै चंदा॥
बासन के जल धर्यौ, जसोदा हरि कों आनि दिखावै।
रुदन करत ढूँढ़ै नहिं पावत, धरनि चंद क्यों आवै॥
दूध दही पकवान मिठाई, जो कुछ मांगु मेरे छौना।
भौरा चकरी लाल पाट कौ, लेडुवा मांगु खिलौना॥
जोड़ जोड़ मांगु सोड़-सोड़ दूंगी, बिरुझै क्यों नंद नंदा।
सूरदास, बलि जाइ जसोमति मति मांगे यह चंदा॥

व्याख्या: 'रुदन...आवै' बर्तन में जल भरकर यशोदा ने रख दिया और उसमें चंद्र का प्रतिबिंब दिखाकर कहा, 'देखो, यह है चंदा, मंगा दिया न मैंने तेरे लिए।' कृष्ण ने उसे पकड़ना चाहा, पर हाथ में परछाहीं क्यों आने लगी! और भी अधिक रोने लगे। ज्यों-ज्यों उसे ढूँढते, वह हाथ में नहीं आता था।

रामकली

प्रात समय उठि सोवत हरि कौ बदन उधारौ नंद।
रहि न सकत, देखन कों आतुर नैन निसा के द्वंद॥
स्वच्छ सैज में तें मुख निकसत गयौ तिमिर मिटि मंद।
मानो मथि पय सिंधु फेन फटि दरस दिखायौ चंद॥
धायौ चतुर चकोर सूर सुनि सब सखि सखा सुछंद।
रही न सुधिहुं सरीर, धीर मति पिवत किरन मकरंद॥

व्याख्या: 'रहि न...द्वंद' कृष्ण का सुन्दर शरीर देखने के लिए नन्द बाबा के नेत्र बड़े उत्कण्ठित हो रहे हैं। निगोड़ी नींद ने इतना बीच डाल दिया, नहीं तो वे निरन्तर देखते ही रहते। रात्रि को यह सोने का झंझट बुरा है। उतनी देर तक मुखचन्द्र को नन्द बाबा के निद्रित नेत्र न देख सके। स्नेह-पथ में यह घाटा क्या कम है।

'स्वच्छ सेज...चंद', स्वच्छ सेज में से कृष्ण ने मुख क्या खोला, मानो दूध का समुद्र मथे जाने पर, उसमें से फेन अलग हो गया और चन्द्रमा निकल पड़ा। फेन यहां सफेद चादर है, उसके अलग करते ही मुख-चंद्र दीख पड़ा।

गौरी

मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसों कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ॥
कहा कहाँ इहिं रिस के मारे खेलत हौं नहि जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो ताता॥

गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर।
 चुटकी दै दै हंसत ग्वाल सब, सिखै दैत बलबीर॥
 तू मोहीं कों मारन सीखी, दाउहिं कबहुं न खीझै।
 मोहन-मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
 “सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।”
 सूर स्याम, “मोहिं गोधन की सौं, हौं माता, तू पूत”॥

व्याख्या: ‘तू मोहीं को मारन सीखी, दाउहिं कबहुं न खीझै’ इस पंक्ति ने तो भाव में जान डाल दी है। जब देखो, तू मुझे ही डांटती-दपकती है। सीधे-सादे को सभी बुरा-भला कहते हैं। मैया, दाऊ से तो तू कुछ नहीं कहती।

शपथ भी गायों की, ग्वालिनी के लिए गोधन से बड़ा धन और क्या हो सकता है! गाय ही धन है, गाय ही धाम है और गाय ही धर्म है। अब भी कृष्ण विश्वास न करेंगे कि यशोदा ही उनकी माता हैं।

कान्हरा

सांझ भई, घर आवहु प्यारे।
 दौरत तहां, चोट लगि जैहै, खेलियौ होत सकारे॥
 आपुहिं जाइ बांह गहि ल्याई, खेह रही लपटाई।
 सपट झारि तातो जल लाई तेल परसि अन्हवाई॥
 सरस बसन तन पोंछि स्याम कौ भीतर गई लिवाई।
 सूर स्याम कछु करी बियारी, पुनि राख्यौ पौढ़ाई॥

व्याख्या: ‘दौरत...सकारे’, कहां दौड़ते फिरते हो? अंधेरे में कहीं गिर पड़ोगे तो चोट लग जायेगी। बस करो, सवेरे खेलना।

बिहाग

खेलत में को काकौ गुसैयां।
 हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबसहीं कत करत रिसैयां॥
 जाति पांति हम तें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां।
 अति अधिकार जनावत हम पै, हैं कछु अधिक तुम्हारे गैयां॥

रुहठि करै तासों को खेलै, कहै बैठि जहं तहं सब ग्वैयां।
सूरदास, प्रभु खेलोई चाहत, दांव दियौ करि नंद-दुहैयां॥

व्याख्या: हार गये, तो बहुत बुरा लगा। खेल में भी अपना विशेष अधिकार चाहते हैं। श्रीदामा बिलकुल ठीक कहता है। भाई, जबरदस्ती ही अपनी जीत मनवाना चाहते हो? रूठना हो रूठ जाओ, हम तुमसे डरने वाले नहीं। खेल में कौन किसका मालिक और कौन किसका नौकर? फिर तुम हमसे बड़े किस बात में हो? तुम भी ग्वाल, हम भी ग्वाल। तुम्हारी जमींदारी में तो वह बस नहीं रहे हैं। तुम राजा होगे तो अपने घर के, हम लोगों पर शासन जताने आए हैं नंद के राजकुमार! तुम्हारे खरिक में कुछ गौयें अधिक हैं, तो इसी से क्या तुम राजाधिराज हो गए? जो खेल में बेईमानी करता है, उसके साथ कौन खेलेगा?

गौरी

सखा सहित गये माखन-चोरी।

देख्यौ स्याम गवाच्छ-पंथ है गोपी एक मथति दधि भोरी॥

हेरि मथानी धरी माट पै, माखन हो उतरात।

आपुन गई कमोरी मांगन, हरि हूं पाई घात॥

पैठे सखन सहित घर सूने, माखन दधि सब खाई।

छूंछी छांड़ि मटुकिया दधि की हंस सब बाहिर आई॥

आइ गई कर लियें मटुकिया, घर तें निकरे ग्वाल।

माखन कर, दधि मुख लपटायें देखि रही नंदलाल॥

भुज गहि लियौ कान्ह कौ बालक भाजे ब्रज की खोरि।

सूरदास, प्रभु ठगि रही ग्वालनि मनु हरि लियौ अंजोरि॥

व्याख्या: 'ठगि रही ग्वालनि', चोर पकड़ तो लिया, पर कुछ करते न बना। माखन-चोर की मोहिनी छवि देखकर ग्वालनि मोहित-सी हो गई। अब तक तो माखन ही चोरी गया था, अब मन भी चुरा लिया गया। भोली-भाली गोपी का मन बालगोविन्द ने अपनी मुट्ठी में कर

लिया। हाथ में माखन लिये और मुख पर दही का लेप किये गोपाल को देखकर मन हाथ में रखना बड़ा कठिन था।

गौरी

मैया री, मोहिं माखन भावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई मोहिं नाहिं रुचि आवे॥
ब्रज जुवती इक पाछें ठाड़ी, सुनति स्याम की बातें।
मन-मन कहति, कबहुं अपने घर देखौ माखन खातें॥
बैठें जाय मथनियां के ढिंग, मैं तब रहौं छिपानी।
'सूरदास' प्रभु अन्तरजामी, ग्वालि मनहिं की जानी॥

व्याख्या: 'मन-मन...छिपानी', कभी क्या ऐसा दिन होगा, जब अपने घर में गोपाल को मैं माखन खाते हुए देखूंगी? अच्छा हो कि मैं छिपकर खड़ी हो जाऊं और नंद-नंदन यह जानकर कि अब यहां कोई नहीं है, मथानी के पास बैठकर माखन खाने लगे।

देश

गोपालहिं माखन खान दै।
सुनु री सखी, कोऊ जिनि बोले, बदन दही लपटान दै॥
गहि बहियां हौं लै के जैहों, नयननि तपनि बुझान दै।
वा पे जाय चौगुनो लैहौं, मोहिं जसुमति लौं जान दै॥
तुम जानति हरि कछू न जानत, सुनत ध्यान सों कान दै।
सूरदास, प्रभु तुम्हारे मिलन कों राखौ तन मन प्रान दै॥

व्याख्या: 'नयननि तपनि बुझान दै', "अरी सखी, बीच में बोलकर विघ्न मत कर। तू जानती नहीं, कितने दिनों से यह अभिलाषा थी कि सभी कृष्ण को अपने घर में माखन खाते हुए देखूं। वह आज कहीं पूरी हुई है। इतनी बाकी और है कि मैं इस नन्हें-से प्यारे चोर का हाथ पकड़कर यशोदा के पास ले जाऊं। तू चुप रह। इस सुन्दर छवि की जलधारा से मुझे अपनी आंखों की जलन सिरा लेने दे।"

सारंग

जसोदा, कहां लौं कीजै कानि।
 दिन प्रति कैसे सही जाति है दूध-दही की हानि॥
 अपने या बालक की करनी जो तुम देखौ आनि।
 गोरस खाई ढूँढ़ि सब बासन, भली परी यह बानि॥
 मैं अपने मन्दिर के कोनैं माखन राख्यौ जानि।
 सोई जाई तुम्हारे लरिका लोनों है पहिचानि॥
 बूझि ग्वालनि, घर में आयौ नैकु व संका मानि।
 सूर, स्याम तब उत्तर बनायौ, चींटी काढ़त पानि॥

व्याख्या: 'दिन प्रति...हानि', एक दिन की बात हो तो जाने दूँ। यह तो रोज-रोज ही दूध-दही की चोरी हो रही है। कहां तक लिहाज किया जाय, कहां तक नुकसान उठाया जाय!

'स्याम तब...पानि', ने तुरंत बात बना दी, बोले, "मैया, इस ग्वालनि के घर दही थोड़ा ही खा रहा था, मैं दही देखकर उसमें की चींटियाँ हाथ से निकाल रहा था। इसने समझ लिया, मैं दही चाट रहा था।"

बिहाग

कुंवर जल लोचन भरि भरि लैत।
 बालक बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचैत॥
 छोरि कमर तें दुसह दांवरी, डारि कठिन कर बैत।
 कहि तोकों कैसे आवतु है सिसु पर तामस एत॥
 मुख आंसू माखन के कनिका निरखि नैन सुख देत।
 मनु ससि स्रवत सुधाकन मोती उडुगन अवलि समेत॥
 सरबसु तौ न्योछावरि कीजे, सूर स्याम के हेत।
 ना जानौ, केहिं पुन्य प्रगट भये, इहिं ब्रज-नंद निकेत॥

व्याख्या: एक गोपी, शायद वही जो उलाहना देने आयी थी, कृष्ण को इस तरह बंधन में पड़ा देख, यशोदा से कहती है, "अरी यशोदा,

तनिक कन्हैया की ओर देख तो। बच्चे की आंखें डबडबा आई हैं। क्यों इतना क्रोध कर रही है? यह कठिन डोरी कुंवर की कमर से खोल दे और वह छड़ी फेंक दे। यह पांच बरस का निरा बच्चा ही तो है। कहीं नन्हें-से बालक पर इतना क्रोध किया जाता है? इस समय भी कुंवर कान्ह कैसा सुन्दर लगता है, मुख पर आँसुओं की बूंदें टपक रही हैं और माखन के कण भी इधर-उधर लगे हुए हैं। ऐसा लगता है, जैसे ताराओं सहित चन्द्रमा अमृत के कणों और मोतियों की वर्षा कर रहा हो। यह शोभा भी नेत्रों को आनन्द देती है। यशोदा, यह वह मोहिनी मूरत है, जिस पर सर्वस्व न्योछावर कर देना चाहिए। न जाने, पूर्व के किस पुण्य प्रताप से नन्द बाबा के घर में आकर इस सुन्दर बालक ने जन्म लिया है।”

सोरठ

जसोदा, तेरो भलो हियो है माई।
 कमलनयन माखन के कारन बांधे ऊखल लाई॥
 जो संपदा दैव मुनि दुर्लभ सपनेहूँ दर्ई न दिखाई।
 याही तें तू गरब भुलानी घर बैठे निधि पाई॥
 सुत काहू कौ रोवत देखति दौरि लेति हिय लाई।
 अब अपने घर के लरिका पै इती कहा जड़ताई॥
 बारंबार सजल लोचन ह्वै चितवत कुंवर कन्हाई।
 कहा करौं, बलि जाउं, छोरती तेरी सौंह दिखाई॥
 जो मूरति जल-थल में व्यापक निगम न खोजत पाई।
 सोई महारि अपने आंगन में दै-दै चुटकि नचाई॥
 सुर पालक सब असुर संहारक त्रिभुवन जाहि डराई।
 सूरदास, प्रभु की यह लीला निगम नेति नित गई॥

व्याख्या: ‘तेरो भलो...माई’, धन्य है, तेरा हृदय बड़ा अच्छा है, अर्थात् बड़ा बुरा है, बड़ा कठोर है।

‘सूत काहू...जड़ताई’, तेरा हृदय तो इतना सरस था कि किसी के भी बच्चे को रोता देखती, तो दौड़कर उसे छाती से लगा लेती थी।

न जाने, अब तुझे क्या हो गया, जो अपनी ही कोख के लाल पर तू इतना कठोरपन दिखा रही है।

‘कहा करौं...दिवाई’, अपने प्रति सहानुभूति दिखाने वाली उस गोपी की ओर कृष्ण आंखें डबडबाकर जब बार-बार देखते हैं, तब वह कहती है, “क्या करूं, मैं लाचार हूं। मैं तुम्हारी मैया से नहीं डरती। अब तक तो मैंने यह रस्सी खोल दी होती। पर तुम्हारी ही सौगंध तुम्हारी मां ने मुझे रखा दी है। सो बंधन खोलने से लाचार हूं।”

सोरठ

यह सुनिकैं हलधर तहं धाये।

देखि स्याम ऊखल सों बांधे, तबहीं दोउ लोचन-भरि आये॥

“मैं बरज्यौ के बार कन्हैया, भली करी, दोउ हाथ बंधाये।

अजहूं छांडोगे लंगराई” दोउ कर जोरि जननि पै आये॥

‘स्यामहिं छोरि मोहिं बरु बांधौ’, निकसतसगुन भले नहिं पाये।

मेरो प्रान जीवन धन मैया, ताके भुज मोहिं बंधे दिखाये॥

माता सों कहि करौं ढिठाई शेषरूप कहि नाम सुनाये।

सूरदास, तब कहति जसोदा, ‘दोउ भैया एकहिं मत भाये’॥

व्याख्या: ‘स्यामहि छोरि...दिखाये’, यशोदा मैया से बलराम कहते हैं, “मैया, मेरे प्यारे जीवन धन भाई को तू छोड़ दे। उसके बदले मुझे भले रस्सी से बांध ले। घर से निकलते आज इसी से अपशकुल हुए थे। अपने प्यारे भाई को मैंने आज आंखों बंधा हुआ देखा।”

पर यह कैसे हो सकता था कि अपराध तो करें कृष्ण और बांधे जायें बलराम!

‘शेष-रूप कहि नाम सुनाये’ जब बलराम जी ने जरा तनकर कहा, “तुम जानती नहीं, मैं। कौन हूँ। मैं साक्षात् शेषनाग हूँ। खोल दो इसी समय मेरे भाई को।” इस धमकी का भी कोई असर न हुआ। मुस्कराकर यशोदा ने कहा, “तुम दोनों ही भाई बातें बनाना सीख गये हो। माखन का यह चोट्टा कहने लगता है कि मैं विष्णु भगवान् हूँ, और तू आज कहता है कि मैं साक्षात् शेषनाग हूँ।”

गोरी

निरखि स्याम हलधर मुसुकानैं।
को बांधै को छोरे, इनकों इन महिमा एई पै जानैं॥
उतपति प्रलय करत हैं एई, सेष सहसमुख सुजस बखानैं।
जसलार्जुनहिं उधारन कारन करत अपन मनमानैं॥
असुर संहारन, भगतहिं तारन, पावन पतित कहावत बानैं।
सूरदास, प्रभु भाव-भगति के अति हित जसुमति हाथ बिकानैं॥

व्याख्या: कृष्ण को बंधन में पड़ा देख बलराम मन-ही-मन मुस्कराये और कहने लगे, इन्हें कौन तो बांध सकता है और कौन खोल सकता है? इनकी महिमा यही जानें। यही सृष्टि रचते हैं, और यही संहार करते हैं। इनका यशोगान शेष सहस्र मुखों से करते हैं। इन्हीं ने तो आज स्वयं ही अपने को बंधाने का एक हेतु निकाल लिया है। बात यह है कि यमलार्जुन का उद्धार करना था। राक्षसों को मारने वाले, भक्तों को मुक्ति देने वाले और पापियों का उद्धार करने वाले यही तो हैं। यह सदा भक्ति के अधीन हैं, इसी कारण यशोदा मैया के वश में हो गये हैं।

इस समस्त पद में श्रीकृष्ण की ईश्वरता ही दिखाई गई है। 'यमलार्जुन उद्धार' के प्रसंग में ईश्वरता की निदर्शन करना आवश्यक था।

'यमलार्जुन' नलकूबर और मणिग्रीव नामक दो कुबेर पुत्र नारद के शाप से ब्रज में जुड़वां अर्जुन वृक्ष के रूप में पैदा हुए थे। उन्हें सान्त्वना दे दी गई थी कि श्रीकृष्ण के स्पर्श से उनका उद्धार होगा। वही हुआ। वे दोनों वृक्ष धड़ाम से गिर पड़े और नलकूबर के रूप में उन्होंने भगवान् की स्तुति की। दोनों भाई शाप-मुक्त होकर पिता कुबेर के लोक में चले गये।

आसावरी

मैया, हाँ गाय चरावन जैहों।

तू कहि महर नंद बाबा सों, बड़ी भयौ, न डरैहों॥

रेता पैता मना मनसुखा हलधर संगहिं रहैं।
 बंसीबट तर ग्वालनि के संग खेलत अति सुख पैहैं॥
 ओदन भोजन दे दधि कांवरि भूख लगे तैं खहैं।
 सूरदास, है साखि जमुन जल सौंह देहु जु नहैं॥

व्याख्या: 'तू कहि डरै...हरैं', "मैया, अब तो तू नंद बाबा से सिफारिश कर दे। मैं, देख, कितना बड़ा हो गया हूँ। मुझे वन में जाते कुछ भी डर न लगेगा।"

'है साखि...नहे हौं,' "मैया, तू सदा आशंका किया करती है कि कृष्ण कहीं यमुना में डूब न जाय, तो मैं यमुना जल की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं कभी उसमें न नहाऊंगा। तू मेरा विश्वास रख।"

सारंग

आई छाक बुलाये स्याम।

यह सुनि सखा सबै जुरि आये, सुबल सुदामा अरु श्रीदाम॥

कमलपत्र दौना पलास के सब आगे धरि परसत जात।

ग्वालमंडली मध्य स्यामधन सब मिलि भोजन रुचिकर खात॥

ऐसौं भूखमांझ इह भोजन पठै दियौ करि जसुमति मात।

सूर, स्याम अपनी नहिं जैवत, ग्वालन कर तैं लै लै खात॥

व्याख्या: 'ऐसी भूख...मात', कैसी कड़ाके की भूख लगी थी। जसोदा मैया बड़ी भली है, जो इस भूख में ताजी छाक तैयार करके यहां भेज दी है।

'स्याम...खात', ग्वालबालों के हाथ से छीन छीनकर श्रीकृष्ण खाते हैं। अपनी छाक इतनी मीठी नहीं लगती, जितनी कि उन सबके पत्तलों की।

बिलावल

आजु बन बन तैं ब्रज आवत।

रंग सुरंग सुमन की माला, नंद नंदन उर पर छबि पावत॥

ग्वालबाल गोधन संग लीनें, नाना गति कौतुक उपजावत।
कोउ गावत, कोउ नत्य करत, कोउ उघटत, कोउ ताल बजावत॥
रांभति गाय बच्छ हित सुधि करि प्रेम उमंगि थन दूध चुबावत।
जसुमति बोलि उठी हरषित हैं 'कान्हा धेनु चराये आवत'॥
इतनी कहत आय गये मोहन, जननी दौरि हिये लै लावत।
सूर स्याम के कृत जसुमति सों ग्वालबाल कहि प्रकट सुनावत॥

व्याख्या: 'नाना गति...उपजावत', ग्वाल-बाल अनेक प्रकार के नाच-कूद से आनन्द पैदा कर रहे हैं, कोई किसी गति से चला आ रहा है तो कोई किसी गति से।

'रांभति...चुबावत', गाय अपने बछड़े की याद करके दौड़ती हुई चली आ रही है। बार-बार रंभाती है, थनों से दूध मानों चू रहा है।

'स्याम के कृत', दिन भर की कृष्ण की बातें, जैसे इन्होंने, मैया बड़ा ऊधम मचाया, कहीं इस पेड़ पर चढ़े, कहीं उस पेड़ पर, जमुना में भी खूब नहाये, श्रीदामा से लड़ाई की और सुबल से मित्रता आदि, शिकायतें। पर गाया चराने की तो सबने तारीफ ही की होगी, कारण कि गोचारण में गोपाल बड़े कुशल थे। यही सब कृत्य थे कृष्ण के। इन्हीं सब बातों को बड़ा-चढ़ाकर यशोदा के सामने कहा गया।

गौरी

जसुमति दौरि लिये हरि कनियां।

“आजु गयौ मेरौ गाय चरावन, हौं बलि जाउं निछनियां॥

मो कारन कछु आन्यौ नाहीं, बन फल तोरि नन्हैया।

तुमहिं मिलैं मैं अति सुख पापौ, मेरे कुंवर कन्हैया।

कछुक खाहु जो भावै मोहन”, “दैरी माखन रोटी।

सूरदास, प्रभु जीवहु जुग-जुग हरि-हलधर की जोटी॥

व्याख्या: मेरे नन्हें-से लाल, अपनी मैया के लिए कुछ वन के फल तोड़कर नहीं लाये? मैंने यों ही कहा कन्हैया, तुझे पाकर मुझे क्या नहीं मिल गया। भूख तो लगी ही होगी, चल जो तुझे भावै सो खा ले। “दैरी माखन-रोटी।” सर्वस्व तो माखन-रोटी ही है।

वन-वन गाय चराने वाली यह हरि-हलधर की प्यारी जोड़ी जुग-जुग चिरंजीवी रहे।

रूप-माधुरी

धनाश्री

जौ बिधिना अपबस करि पाऊं।
तौ सखि कह्यौ कछु तेरो, अपनी साध पुराऊं॥
लोचन रोम-रोम प्रति मांगों पुनि-पुनि त्रास दिखाऊं।
इकटक रहैं पलक नहिं लागै, पद्धति नई चलाऊं॥
कहा करौं छवि-रासि स्यामधन, लोचन द्वै, नहिं ठाऊं।
ऐते पर ये निर्मिष सूर, सुनि, यह दुख काहि सुनाऊं॥

व्याख्या: 'तौ सखि...तेरो' सखी, तूने कृष्ण की छवि देखने को कहा है, पर इन दो छोटी-छोटी आंखों से उस अनंत रूप-राशि को कैसे निरखूं? यदि विधाता को किसी तरह वश में कर सकूं, तो तेरा भी कहना सफल हो जाय और कृष्ण को देखने की मेरी लालसा भी पूरी हो जाय।

'कहा करौं...ठाऊं' क्या करूं, श्याम सुन्दर तो सौन्दर्य के सागर हैं, उन्हें इन दो नेत्रों में बसा सकती हूं। स्थान ही नहीं, लाचारी है।

'ऐते पर...सुनाऊं', एक तो दो ही आंखें, फिर पलकों का बार-बार लाना, यह और भी बला है। सदा खुली ही रहतीं पलक न गिरते, तो फिर भी कुछ संतोष हो जाता। इकटक देखती तो रहती। पर वह भी अब होने का नहीं।

देश

नैन भये बोहित के काग।

उड़ि उड़ि जात पार नहिं पावैं, फिरि आवत इहिं लाग॥
ऐसी दसा भई री इनकी, अब आगे पछितान।
मो बरजत बरजत उठि धाये, नहिं पायौ अनुमान॥

वह समुद्र ओछै वासन ये, धरैं कहां सुखरासि।
सुनहु सूर, ये चतुर कहावत, वह छवि महा प्रकासि॥

व्याख्या: 'उड़ि-उड़ि...लाग', ये नेत्र संसार की दूसरी-दूसरी वस्तुएं भी देखते हैं, पर उन पर दृष्टि स्थिर नहीं रहती। अटके हुए तो ये कृष्ण छवि में ही हैं, बार-बार वहीं चले जाते हैं। सारा कृष्ण सौन्दर्य का सागर है, जिनका पार पाना कठिन है। जहां तक दृष्टि जाती है, सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य है। उस सौन्दर्य को छोड़कर इन नेत्रों के लिए कहीं और आश्रय ही नहीं।

'ये चतुर...प्रकासि', नेत्र बड़े चतुर समझे गये हैं, पर उस असीम सुंदरता के सामने इनकी चतुराई नहीं चलती, वहां तो ये भी ठग लिये गए हैं।

बिहाग

नटवर वेष काछे स्याम।

पदकमल नख-इन्दु सोभा, ध्यान पूरनकाम॥

जानु जंघ सुघट निकाई, नाहिं रंभा तूल।

पीतपट काछनी मानहुं जलज-केसरि झूल॥

कनक-छुद्रावली पंगति नाभि कटि के मीर।

मनहुं हंस रसाल पंगति रही है हृद-तीर॥

झलक रोमावली सोभा, ग्रीव मोतिन हार।

मनहुं गंगा बीच जमुना चली मिलिकैं धार॥

बाहुदंड बिसाल तट दोउ अंग चंदन-रेनु।

तीर तरु बनमाल की छबि ब्रजजुवति-सुखदैनु॥

चिबुक पर अधरनि दसन दुति बिंव बीजु लजाइ।

नासिका सुक, नयन खंजन, कहत कवि सरमाइ॥

स्त्रवन कुंडल कोटि रबि-छबि, प्रकुटि काम-कोदंड।

सूर प्रभु है नीप के तर, सिर धरैं स्त्रीखंड॥

व्याख्या: देखो, आज श्याम सुन्दर के नटवर का भेष धारण किया है। इस रूप का ध्यान सारी कामनाएं पूरी करता है।

चरण कमलों का तनिक ध्यान तो धरो। पैरों के नख तो मानो दुइज के चन्द्र हैं। जानु भी बड़े सुन्दर हैं।

जंघाओं की सुन्दर बनावट को केले का वृक्ष कहीं पा सकता है? उसकी उपमा तुच्छ है।

पील वस्त्र की काछनी क्या है, मानो कमल की केसर घुटनों के चारों ओर लहरा रही है।

उधर नाभि और कमर के पास सोने की करधनी की लड़ें ऐसी जान पड़ती हैं, जैसे सुन्दर हंसावली तालाब के तट पर विहार कर रही हो। (यहां तालाब नाभि का उपमान माना गया है।)

फिर वही भूमावली और गले में पड़ा हुआ मोतियों का हार ऐसा शोभित हो रहा है, मानो गंगा के मध्य में यमुना की धारा मिलकर बह रही हो। (यहां मोतियों का हार ही गंगा की धवल धारा है और उसके बीच में रोमावली श्याम यमुना है।)

उस गंगा-यमुना की धारा के दोनों तट क्या हैं, बड़े-बड़े बाहु। शरीर में चन्दन का लेप लगा हुआ है, वह मानो उन सरिताओं की रेणुका है।

वहीं तुलसी दल तथा अन्य पुष्पों की वनमाला नदी तट की वृक्षावली के समान शोभा दे रही है।

चिबुक के ऊपर अरुण होठों के आगे बिंबाफल और दंतपंक्ति के आगे विद्युत भी लज्जित हो रही है।

नासिका को तोते की उपमा देते और नेत्रों को खञ्जन कहते कवि को संकोच होता है। ये उपमाएं अन्यत्र भले ही ठीक बैठती हों, पर यहां तो तुच्छ हैं।

कानों के मकराकृत कुण्डलों की आभा करोड़ों सूर्यों के समान है, और भौंहें तो मानो कामदेव की कमानें हैं।

सूरदास जी कहते हैं, कैसा सुन्दर नटवर वेश है, कंदब के नीचे आप खड़े हैं और सिर पर मोर पंखों का मुकुट धारण किये हुए हैं।

पूर्वी

मुरली गति विपरीत कराई।

तिहूं भुवन करि नाद समान्यौ राधार मन बजाई॥

बछरा धन नाहीं मुख परसत, चरत नहीं तृन धेतु।
यमुना उल्टी धार चली बहि, पवन थकित सुनि केनु॥
बिहल भये नाहिं सुधि काहू, सूर गंधव नर-नारि।
सूरदास, सब चकित जहां तहं ब्रजजुवतिन सुखकारि॥

व्याख्या: मुरली नाद ने समस्त संसार पर अपना अधिकार समा लिया है। दुनिया मानो उसके इशारे पर नाच रही है। तीनों लोकों में वंशी की ही ध्वनि भर गई है।

सब चित्र लिखे से दिखाई देते हैं। बछड़ा अपनी माँ के थन को छूता भी नहीं। गौएं मुंह में तृण भी नहीं दबातीं। और जमुना, वह तो आज उल्टी बह रही है।

पवन की भी चंचलता रुक गई है। वह भी ध्यानस्थ हो मुरली नाद में मस्त हो रही है। सभी बेसुध हैं।

देव और गन्धर्व तक प्रेम-विहल हैं, फिर नर-नारियों का तो कहना ही क्या?

विरह

बिलावल

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखिकैं मोहन के मुख-जोग॥
निसि-बासर छतियां लै लाऊं, बालक-लीला गाऊं।
वैसे भाग बहुरि फिर हूँ हैं कान्हें गोद खिलाऊं॥
प्रात समय उठि माखन-रोटी को बिन मांगे दैहै।
को मेरे बालक कुंवर कान्ह कौ छन-छन आगो लैहै॥
कहियो जाय, पथिक, घर आवैं राम स्याम दोउ भैया।
सूर, स्याम कत होत दुखारी, जिनकैं मो सी मैया॥

व्याख्या: मथुरा की ओर जाते हुए एक पथिक के हाथ यशोदा कृष्ण-बलराम को संदेशा भेजती हैं।

‘सूल...जोग’, आज यह दर्ईमारा माखन देख-देखकर शूल-सा उठता है। मेरा मोहन माखन को कैसे मचल-मचलकर मांगता था। अब इसे लेकर क्या करूं?

रामकली

सदैसो दैवकी सों कहियौ।

‘हैं तौ धाय तिहारे सुत की, मया करति नित रहियौ॥

जदपि टेव जानति तुम उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै॥

प्रतिहिं उठत तुम्हारे कान्हहिं माखन-रोटी भावै॥

तेल उबटनों अरु तातो जल देखत हीं भजि जाते।

जोड़-जोड़ मांगत सोड़-सोड़ देती, क्रम-क्रम करिकैन्हाते॥

सूर, पथिक सुनि, मोहिं रैन-दिन बढ्यौ रहत उर सोच।

मेरो अलक लड़ैतो मोहन है हे करत संकोच॥

व्याख्या: ‘मैं तो तुम्हारे पूत की मात्र एक धाय हूं, इसलिए सदा से दया बनाए रखना’, ‘जदपि टेव...आवै’, तुम्हारा तो वह लड़का ही ठहरा, तुम उसकी आदतें जानती ही हो, पर ढिंढाई क्षमा करना, पाला-पोसा तो मैंने ही उसे है, उसकी कुछ खास-खास आदतें मैं ही जानती हूं, सो कुछ निवेदन मुझे करना ही पड़ता है।

‘हैं-है करत संकोच’, तुम्हारे घर को वह पराया घर समझता होगा और मेहमान की तरह वहां मेरा कन्हैया संकोच करता होगा।

सोरठ

मेरो कान्ह कमलदललोचन।

अब की बेर बहुरि फिरि आवहु, कहा लगे जिय सोचन॥

यह लालसा होति हिय मेरे, बैठी देखति रैहाँ।

गाइ चरावन कान्ह कुंवर सों भूलि न कबहुं कैहाँ॥

करत अन्याय न कबहुं बरजिहाँ, अरु माखन की चोरी।

अपने जियत नैन भरि दैखौं, हरि हलधर की जोरी॥

एक बेर है जाहु यहां लौं, मेरे ललन कन्हैया।

चारि दिवसहीं पहुँई कीजौ, तलफति तेरी मैया॥

व्याख्या: 'करत...चोरी', शायद तुम इसलिए रूठकर मथुरा में जाकर बस गए हो कि मैंने तुम्हें कभी-कभी डांटा था। सो अब कभी नहीं डांटूंगी। कितना ही तुम ऊधम करो, कभी रोकूंगी नहीं। माखन-चोरी के लिए भी अब तुम्हारी छूट रहेगी। अब तो सब ठीक है न। तो फिर चले आओ न, मेरे लाल।

'रैहों...कैहौ' ये दोनों बुन्देलखंडी बोली के प्रयोग हैं।

गौरी

कहियौ, नंद कठोर भये।

हम दोउ बीर डारि परघरै, मानो थाती सौंपि गये॥

तनक-तनक तैं पालि बड़े किये, बहुतै सुख दिखराये।

गो-चारन कों चालत हमारे पीछे कोसक धाये॥

ये बसुदेव देवकी हमसों कहत आपने जाये।

बहुरि बिधाता जसुमतिजू के हमहिं न गोद खिलाये॥

कौन काज यहि राजनगरि कौ, सब सुख सों सुख पाये।

सूरदास, ब्रज समाधान करु, आजु-काल्हि हम आये॥

व्याख्या: श्रीकृष्ण अपने परम ज्ञानी सखा उद्धव को मोहान्ध ब्रजवासियों में ज्ञान प्रचार करने के लिए भेज रहे हैं। इस पद में नंद बाबा के प्रति संदेश भेजा है। कहते हैं—

“बाबा, तुम इतने कठोर हो गये कि हम दोनों भाइयों को पराये घर में धरोहर की भांति सौंप कर चले गए। जब हम जरा-जरा से थे, तभी से तुमने हमें पाल-पोसकर बड़ा किया, अनेक सुख दिए। वे बातें भूलने की नहीं।

जब हम गाय चराने जाते थे, तब तुम एक कोस तक हमारे पीछे-पीछे दौड़ते चले आते थे। हम तो बाबा, सब तरह से तुम्हारे ही हैं।

पर वसुदेव और देवकी का अनधिकार तो देखो। ये लोग नंद-यशोदा के कृष्ण-बलराम को आज 'अपने जाये पूत' कहते हैं।

वह दिन कब होगा, जब हमें यशोदा मैया फिर अपनी गोद में खलायेंगी। इस राजनगरी, मथुरा के सुख को लेकर क्या करें! हमें तो अपने ब्रज में ही सब प्रकार का सुख था।

उद्धव, तुम उन सबको अच्छी तरह से समझा-बुझा देना, और कहना कि दो-चार दिन में हम अवश्य आयेंगे।”

सारंग

नीके रहियौ जसुमति मैया।
 आवहिंगे दिन चारि-पांच से हम हलधर दोउ भैया॥
 जा दिन तें हम तुम तें बिछुरै, कह्यौ न कोउ 'कन्हैया'।
 कबहुं प्रात न कियौ कलेवा, सांझ न पौन्हीं पैया॥
 वंशी बैत विषान देखियौ द्वार अबेर-सबेरो।
 लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो॥
 कहियौ जाइ नंद बाबा सों, बहुत निठुर मन कीन्हौं।
 सूरदास, पहुंचाइ मधुपुरी बहुरि न सोधौ लीन्हौं॥

व्याख्या: 'कह्यौ न कोउ कन्हैया' यहां मथुरा में तो सब लोग कृष्ण और यदुराज के नाम से पुकारते हैं, मेरा प्यार का 'कन्हैया' नाम कोई नहीं लेता।

'लै जिनि जाइ चुराइ राधिका' राधिका के प्रति 12 वर्ष के कुमार कृष्ण का निर्मल प्रेम था, यह इस पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है। राधा कहीं मेरा खिलौना न चुरा ले जाय, कैसी बालकोचित सरलोक्ति है।

देश

जोग ठगौरी ब्रज के बिकैहै।
 यह ब्योपार तिहारो ऊधौ, ऐसोई फिरि जैहै॥
 यह जापे लै आये हौ मधुकर, ताके उर न समैहै।
 दाख छांड़ि कै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै॥
 मूरी के पातन के कैना को मुक्ताहल दैहै।
 सूरदास, प्रभु गुनहिं छांड़िकै को निर्गुन निरबैहै॥

व्याख्या: उद्धव ने कृष्ण-विरहिणी ब्रजांगनाओं को योगाभ्यास द्वारा निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए जब उपदेश दिया, तो वे

ब्रजवल्लभ उपासिनी गोपियां कहती हैं कि इस ब्रज में तुम्हारे योग का सौदा बिकने का नहीं। जिन्होंने सगुण ब्रह्म कृष्ण का प्रेम-रस-पान कर लिया, उन्हें तुम्हारे नीरस निर्गुण ब्रह्म की बातें भला क्यों पसन्द आने लगीं! अंगूर छोड़कर कौन मूर्ख निबोरियां खायेगा? मोतियों को देकर कौन मूढ़ बदले में मूली के पत्ते खरीदेगा? योग का यह ठग व्यवसाय प्रेमभूमि ब्रज में चलने का नहीं।

टोडी

ऊधो, होहु इहां तैं न्यारे।

तुमहिं देखि तन अधिक तपत है, अरु नयननि के तारे॥

अपनो जोग सैंति किन राखत, इहां देत कत डारे।

तुम्हरे हित अपने मुख करिहैं, मीठे तैं नहिं खारे॥

हम गिरिधर के नाम गुननि बस, और काहि उर धारे।

सूरदास, हम सबै एकमत तुम सब खोटे कारे॥

व्याख्या: 'तुमहि...तारे', तुम जले पर और जलाते हो, एक तो कृष्ण की विरहाग्नि से हम यों ही जली जाती हैं, उस पर तुम योग की दाहक बातें सुना रहे हो। आंखें यों ही जल रही हैं। हमारे जिन नेत्रों में प्यारे कृष्ण बस रहे हैं, उनमें तुम निर्गुण निराकार ब्रह्म बसाने को कह रहे हो।

'अपनो...डारें', तुम्हारा योगशास्त्र तो एक बहुमूल्य वस्तु है, उसे हम जैसी गंवार गोपियों के आगे क्यों व्यर्थ बरबाद कर रहे हो।

'तुम्हारे...खारे', तुम्हारे लिए हम अपने मीठे को खारा नहीं कर सकती। प्यारे मोहन की मीठी याद को छोड़कर तुम्हारे नीरस निर्गुण ज्ञान का आस्वादन भला हम क्यों करने चलीं?

केदारा

फिर फिर कहा सिखावत बात।

प्रातकाल उठि देखत ऊधो, घर-घर माखन खात॥

जाकी बात कहत हौ हम सों, सो है हम तैं दूरि।
 इहं है निकट जसोदानन्दन प्रान-सजोवनि भूरि॥
 बालक संग लियें दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
 सूर, सीस नीचैं कत नावत, अब नहिं बोलत॥

व्याख्या: 'जाकी बात...दूरि', जिस निर्गुण ब्रह्म की बात तुम हमारे सामने बना रहे हो, वह तो हमसे बहुत दूर है, हमारे परिमित ज्ञान के परे है।

'सीस नीचें...बोलत', अब क्यों नीचे को सिर कर लिया? कुछ बोलते क्यों नहीं?

रामकली

ऊधो, मन नाहीं दस बीस।
 एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधे ईस॥
 सिथिल भई सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
 स्वासा अटकिरही आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस॥
 तुम तौ सखा स्यामसुंदर के, सकल जोग के ईस।
 सूरदास, रसिकन की बतियां पुरवौ मन जगदीस॥

व्याख्या: गोपियां कहती हैं, "मन तो हमारा एक ही है, दस-बीस मन तो हैं नहीं कि एक को किसी के लगा दें और दूसरे को किसी और में। अब वह भी नहीं है, कृष्ण के साथ अब वह भी चला गया। तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की उपासना अब किस मन से करें?"

'स्वासा...बरीस', गोपियां कहती हैं, "यों तो हम बिना सिर की-सी हो गई हैं, हम कृष्ण वियोगिनी हैं, तो भी श्याम मिलन की आशा में इस सिर-विहीन शरीर में हम अपने प्राणों को करोड़ों वर्ष रख सकती हैं।"

'सकल जोग के ईस' क्या कहना, तुम तो योगियों में मी शिरोमणि हो। यह व्यंग्य है।

टोडी

अंखियां हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप-रस रांची ये बतियां सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं भूखी।
अब इन जोग संदेसनि ऊधो, अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर, जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता है सूखी॥

व्याख्या: 'अंखियां...रूखी', जिन आंखों में हरि-दर्शन की भूख लगी हुई है, जो रूप-रस में रंगी जा चुकी हैं, उनकी तृप्ति योग की नीरस बातों से कैसे हो सकती है?

'अवधि...दूखी', इतनी अधिक खीझ इन आंखों को पहले नहीं हुई थी, क्योंकि श्रीकृष्ण के आने की प्रतीक्षा में अब तक पथ जोहा करती थीं। पर उद्धव, तुम्हारे इन योग के संदेशों से इनका दुःख बहुत बढ़ गया है।

'जोग जनि...सूखी', अपने योग की नाव तुम कहाँ चलाने आए हो? सूखी रेत की नदियों में भी कहीं नाव चला करती है? हम विरहिणी ब्रजांगनाओं को क्यों योग के संदेश देकर पीड़ित करते हो? हम तुम्हारे योग की अधिकारिणी नहीं हैं।

मलार

ऊधो, हम लायक सिख दीजै।
यह उपदेस अगिनि तैं तातो, कहो कौन विधि कीजै॥
तुमहीं कहौ, इहां इतननि में सीखनहारी को है।
जोगी जती रहित माया तैं तिनहीं यह मत सोहै॥
कहा सुनत विपरीत लोक में यह सब कोई कैहै।
देखौ धौं अपने मन सब कोई तुमहीं दूषन दैहै॥
चंदन अगरु सुगंध जे लेपत, का विभूति तन छाजै।
सूर, कहौ सोभा क्यों पावै आंखि आंधरी आंजै॥

व्याख्या: 'हम लायक', हमारे योग्य, हमारे काम की। अधिकारी देखकर उपदेश दो।

'कहौ...कीजै', तुम्हीं बताओ, इसे किस तरह ग्रहण करें?

'विपरीत' उलटा, स्त्रियों को भी कठिन योगाभ्यास की शिक्षा दी जा रही है, यह विपरीत बात सुनकर संसार क्या कहेगा?

'आंखि आंधरी आंजै' अंधी स्त्री यदि आंखों के काजल लगाए तो क्या वह उसे शोभा देगा? इसी प्रकार चंदन और कपूर का लेप करने वाली कोई स्त्री शरीर पर भस्म रमा ले, तो क्या वह शोभा पायेगी?

सारंग

ऊधो, मन माने की बात।

दाख छुहारो छांड़ि अमृतफल, विषकीरा विष खात॥

जो चकोर कों देइ कपूर कोउ, तजि अंगार अघात॥

मधुप करत घर कोरि काठ में, बंधत कमल के पात॥

ज्यों पतंग हित जानि जापुनो दीपक सो लपटात॥

सूरदास, जाकौ जासों हित, सोई ताहि सुहात॥

व्याख्या: 'अंगार अघात', 'तजि अंगार न अघात' भी पाठ है उसका भी यही अर्थ होता है, अर्थात् अंगार को छोड़कर दूसरी चीजों से उसे तृप्ति नहीं होती। 'तजि अंगार कि अघात' भी एक पाठान्तर है। उसका भी यह अर्थ है।

काफी

निरगुन कौन देश कौ बासी।

मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दे बूझति सांच न हांसी॥

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी॥

कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी॥

पावैगो पुनि कियो आपुनो जो रे कहैगो गांसी॥

सुनत मौन है रह्यौ ठगो-सौ सूर सबै मति नासी॥

व्याख्या: गोपियां ऐसे ब्रह्म की उपासिकाएं हैं, जो उनके लोक में उन्हीं के समान रहता हो, जिनके पिता भी हो, माता भी हो और स्त्री तथा दासी भी हो। उसका सुन्दर वर्ण भी हो, वेश भी मनमोहक हो और स्वभाव भी सरस हो। इसीलिए वे उद्धव से पूछती हैं, “अच्छी बात है, हम तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म से प्रीति जोड़ लेंगी, पर इससे पहले हम तुम्हारे उस निर्गुण का कुछ परिचय चाहती हैं। वह किस देश का रहने वाला है, उसके पिता का क्या नाम है, उसकी माता कौन है, कोई उसकी स्त्री भी है, रंग गोरा है या सांवला, वह किस देश में रहता है, उसे क्या-क्या वस्तुएं पसंद हैं, यह सब बलता दो। फिर हम अपने श्याम सुन्दर से उस निर्गुण की तुलना करके बता सकेंगी कि वह प्रीति करने योग्य है या नहीं।”

‘पावैगो...गांसी’, जो हमारी बातों का सीधा-सच्चा उत्तर न देकर चुभने वाली व्यंग्य की बात कहेगा, उसे अपने किए का फल मिल जायेगा।

नट

कहियौ जसुमति की आसीस।

जहां रहौ तहं नंदलाडिले, जीवौ कोटि बरीस॥

मुरली दई, दौहिनी घृत भरि, ऊधो धरि लई सीस।

इह घृत तौं उनहीं सुरभिन कौ जो प्रिय गोप-अधीस॥

ऊधो, चलत सख जु रि आये ग्वाल बाल दस बीस।

अबकै ह्यां ब्रज फेरि बसावौ सूरदास के ईस॥

व्याख्या: ‘जहां रहौ...बरीस’, “प्यारे नंदनंदन, तुम जहां भी रहो, सदा सुखी रहो और करोड़ों वर्ष चिरंजीवी रहो। नहीं आना है, तो न आओ, मेरा वश ही क्या! मेरी शुभकामना सदा तुम्हारे साथ बनी रहेगी, तुम चाहे जहां भी रहो।”

‘मुरली...सीस’, यशोदा के पास और देने को है ही क्या, अपने लाल की प्यारी वस्तुएं ही भेज रही हैं—बांसुरी और कृष्ण की प्यारी

गौओं का घी। उद्धव ने भी बड़े प्रेम से मैया की भेंट सिरमाथे पर ले ली।

गौरी

कहां लौं कहिए ब्रज की बाता।

सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगनि जैसे दिवस बिहात॥

गोपी गाड़ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृसगात।

परमदीन जनु सिसिर हिमी हत अंबुज गन बिनु पात॥

जो कहूं आवत देखि दूरि तें पूंछत सब कुसलात।

चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरननि लपटात॥

पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।

सूर, स्याम संदेसनि के डर पथिक न उहिं भग जात॥

व्याख्या: 'परमदीन...पात', सारे ब्रजवासी ऐसे श्रीहीन और दीन दिखाई देते हैं, जैसे शिशिर के पाले से कमल कुम्हला जाता है और पत्ते उसके झुलस जाते हैं।

'पिक...पावहिं', कोमल और पपीहे विरहाग्नि को उत्तेजित करते हैं, अतः बेचारे इतने अधिक कोसे जाते हैं कि उन्होंने वहां बसेरा लेना भी छोड़ दिया है।

'बायस...खात', कहते हैं कि कौआ घर पर बैठा बोल रहा हो और उसे कुछ खाने को रख दिया जाय, तो उस दिन अपना कोई प्रिय परिजन या मित्र परदेश से आ जाता है। यह शकुन माना जाता है। पर अब कौए भी वहां जाना पसंद नहीं करते। वे बलि की तरफ देखते भी नहीं। यह शकुन भी असत्य हो गया।

मारू

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

बृंदाबन गोकुल तन आवत सघन तृनन की छाहीं॥

प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत।

माखन रोटी दह्यो सजायौ अति हित साथ खवावत॥

गोपी ग्वाल बाल संग खेलत सब दिन हंसत सिरात।

सूरदास, धनि-धनि ब्रजबासी जिनसों हंसत ब्रजनाथ॥

व्याख्या: निर्मोही मोहन को अपने ब्रज की सुध आ गई। व्याकुल हो उठे, बाल्यकाल का एक-एक दृश्य आंखों में नाचने लगा।

वह प्यारा गोकुल, वह सघन लताओं की शीतल छाया, वह मैया का स्नेह, वह बाबा का प्यार, मीठी-मीठी माखन रोटी और वह सुंदर सुगंधित दही, वह माखन-चोरी और ग्वालबालों के साथ वह ऊधम मचाना! कहां गये वे दिन? कहां गई वे घड़ियां?

मलार

तबतें बहुरि न कोऊ आयौ।

वहै जु एक बेर ऊधो सों संदेसों पायौ॥

छिन-छिन सुरति करत जदुपति की परत न मन समुझायौ।

गोकुलनाथ हमारे हित लागि द्वै आखर न पठायौ॥

यहै बिचार करहु धौं सजनी इतौ गहरु क्यों लायौ।

सूर, स्याम अब बेगि मिलौ किन मेघनि अंबर छायौ॥

व्याख्या: 'परत न मन समुझायौ', मन समझाने से भी नहीं समझता।

'अब बेगि...छायौ', घनघोर घटाएं घिर आई हैं। यह संकेत किया गया है कि कहीं इन्द्र तब का बदला न चुका बैठे। ब्रज को, कौन जाने, अब की बार वह डुबा कर ही छोड़े। इसलिए गोवर्द्धनधारी, ये काली-काली घटनाएं देखकर तो, ब्रज को बचाने के लिए आ जाओ।

मलार

अब या तुनहिं राखि कहा कीजै।

सुनि री सखी, स्याम सुंदर बिनु बांटी विषम विष पीजै॥

कै गिरिए गिरि चढ़ि सुनि सजनी, सीस संकरहि दीजै।

के दहिए दारुन दावानल जाई जमुन धंसि लीजै॥

दुसह बियोग अरी, माधव को तनु दिन-हीं-दिन छीजै।

सूर, स्याम अब कबधौं मिलि हैं, सोचि-सोचि जिय जीजै॥

व्याख्या: शरीर का रखना व्यर्थ है अब। बिना श्याम सुन्दर के देह-धारण किये रहना अच्छा नहीं। ऐसे जीने से तो मर जाना ही अच्छा। शरीर नित्य क्षीण होता जाता है।

ईमन

नाथ, अनाथन की सुधि लीजै।

गोपी गाइ ग्वाल गौ-सुत सब दीन मलीन दिनहिं दिन छीज॥

नैन नीर-धारा बाढ़ी अति ब्रज किन कर गहि लीजै।

इतनो बिनती सुनहु हमारी, बारक तो पतियां लिखि दीजै॥

चरन कमल-दरसन नवनौका करुनासिन्धु जगत जसु लीजै।

सूरदास प्रभु आस मिलन की एक बार आवन ब्रज कीजै॥

व्याख्या: 'नैन नीर...लीजे', आंसुओं की धारा बाढ़ पर है। कौन जाने वह ब्रज को किस दिन डुबाकर रहे। जैसे तुमने पहले गोवर्द्धन उंगली पर उठा ब्रज की रक्षा कर ली थी, उसी प्रकार ब्रजवासियों के आंसुओं की बाढ़ से फिर वहां चलकर अपनी लीलाभूमि का उद्धार करो।

विविध

कृष्ण-सुदामा-मैत्री

बिलावल

ऐसैं मोहिं और कौन पहिचानै।

सुनि री सुंदरि, दीनबंधु बिनु कौन मितार्ई मानै॥

कहं हौं कृपन कुचील कुदरसन, कहं लदुनाथ गुसाईं।

भैंट्यौ हृदय लगाइ प्रेम सों उठि अग्रज की नाई॥

निज आसन बैठारि परम रुचि, निजकर चरन पखारे।

पूँछि कुसल स्यामघन सुंदर सब संकोच निबारे॥

लीन्हें छोरि चीर तें चाउर कर गहि मुख में मेले।

पूरब कथा सुनाइ सूर प्रभु गुरु-गृह बसे अकेले॥

व्याख्या: 'निज कर चरन पखारे', अपने हाथ से मेरे पैर धोये। इस प्रसंग पर कवि नरोत्तमदास का बड़ा ही सुंदर सवैया है—

“कैसे बिहाल बेवाइंन सों भये कंटक-जाल गड़े पग जोये।
हाय महादुख पाये सखा तुम, आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करि कै करुनाकर रोये।
पानी परात कौ हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोये॥”

‘लीन्हें...मेले’ सुदामा की पत्नी के एक फटे पुराने चिथड़े में श्रीकृष्ण के लिए भेंट-स्वरूप थोड़े-से चावल बांध दिए थे। श्रीकृष्ण ने सुदामा से पूछा, “क्यों भैया, मेरे लिए भाभी ने कुछ दिया है या नहीं?” बेचारे ब्राह्मण से लज्जा और संकोच के मारे कुछ बोलते न बना। वह फटी पोटली बगल में और जोर से दबा ली। कृष्ण ने पकड़कर वह खींच ही ली और खोलकर वे कच्चे चावल मुट्ठी भर-भर बड़े प्रेम से चबाने लगे।

विदुर के अतिथि

हरि, तुम क्यों न हमारैं आये।

षटरस व्यंजन छाड़ि रसौई साग बिदुर घर खाये॥
ताकी कुटिया में तुम बैठे, कौन बड़प्पन पायौ।
जाति पांति कुलहू तैं न्यारो, है दासी कौ जायौ॥
मैं तोहि कहौं अरे दुरजोधन, सुनि तू बात हमारी।
बिदुर हमारो प्रान पियारो तू विषया अधिकारी॥
जाति-पांति हौं सबकी जानौं, भक्तनि भेद न मानौं।
संग ग्वालन के भोजन कीनों, एक प्रेमव्रत ठानौं॥
जहं अभिमान तहां मैं नाहीं, भोजन बिषा सो लागे।
सत्य पुरुष बैद्यो घट ही में, अभिमानी को त्यागे॥
जहं जहं भीर परै भक्तन पै पड़ पयादे धाऊं।
भक्तन के हौं संग फिरत हौं, भक्तनि हाथ बिकाऊं॥
भक्तबछलता बिरद हमारो बेद उपनिषद गायौ।
सूरदास प्रभु निजजन-महिमा गावत पार न पायौ॥

व्याख्या: अभिमानी दुर्योधन का राजसी सम्मान और षट्स व्यंजन छोड़कर श्रीकृष्ण ने विदुर के यहां, बिना ही निमंत्रण के अलौना साग बड़े प्रेम से खाया था। यह पद उसी प्रसंग का है।

‘सत्य पुरुष...त्यागै’, अंतःकरण में विराजमान सत्यरूपी नारायण अभिमानी के पास कभी नहीं जाता। जहां अहंभाव है, वहां ईश्वरभाव का काम ही क्या? भगवान् तो प्रेम के भूखे हैं, राजसी सम्मान के नहीं। गर्गभंजन गोविन्द को अभिमानी दुर्योधन का मान भंग तो करना ही था, इसीलिए उसका आतिथ्य त्याग दिया और विदुर की कुटिया में जाकर रूखा-सूखा भोजन बड़े प्रेम से किया।

प्रतिज्ञा-भंग

जो पै हरिहिंन शस्त्र गहाऊं।

तौ लाजौ गंगा जननी कौं सांतनु-सुतत कहाऊं॥

स्पंदन खंडि महारथ खंडौं, कपिध्वज सहित डुलाऊं।

इती न करौं सपथ मोहिं हरि की, छत्रिय गतिहिं न पाऊं॥

पांडव-दल सन्मुख है धाऊं सरिता रुधिर बहाऊं।

सूरदास, रणविजयसखा कौं जियत न पीठि दिखाऊं॥

व्याख्या: जब अर्जुन श्रीकृष्ण को रण का निमंत्रण देने गये, तब उन्होंने अर्जुन से कहा, “मैं तुम्हारे साथ रहूंगा अवश्य, पर हाथ में शस्त्र नहीं लूंगा।” उसी प्रतिज्ञा के अनुसार श्रीकृष्ण ने रथ हांकना स्वीकार किया। इधर भीष्म पितामह ने प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य कृष्ण की प्रतिज्ञा तोड़ डालूंगा, उन्हें शस्त्र लेना ही पड़ेगा। यह पद उसी प्रसंग का है।

‘तौ...कौं’, भीष्म पितामह ने गंगा के गर्भ से जन्म लिया था। कहते हैं, यदि मैंने इतना न किया तो गंगा का पुत्र नहीं, गंगा के दूध को लजाने वाला कुपुत्र कहा जाऊंगा।

‘सांतनु-सुत’ भीष्म के पिता का नाम महाराज शांतनु था। ‘इती...पाऊं’, जिन्हें वे परास्त करना चाहते हैं, उसी की शपथ लेते हैं। हरि को हरि के ही बल पर हराना चाहते हैं।

सारंग

मो परतिग्या रहै कि जाउ।

इत पारथ कोप्यौ है हम पै, उस भीषम भटराउ॥

रथ तैं उतरि चक्र धरि कर प्रभु सुभटहिं सन्मुख आयौ।

ज्यों कंदर तें निकसि सिंह झुकि गजनूथनि पै धायौ॥

आय निकट श्रीनाथ बिचारी, परी तिलक पर दीठि।

सीतल भई चक्र की ज्वाला, हरि हंसि दीनी पीठि॥

“जय जय जय जनबत्सल स्वामी”, सांतनु-सुत यौं भाखै।

“तुम बिनु ऐसा कौन दूसरो, जौं मेरो प्रन राखै॥”

“साधु साधु सुरसरी-सुवन तुम मैं प्रन लागि डराऊं।”

सूरदास, भक्त दोऊ दिसि, का पै चक्र चलाऊं॥

व्याख्या: ‘ज्यों...धायौ’, जैसे गुफा से ललकारा हुआ क्रुद्ध शेर झपटकर हाथियों के झुंडों पर दौड़ता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण बड़े-बड़े योद्धाओं पर आक्रमण करते हुए रथ से उतरकर भीष्म की ओर दौड़े।

‘हरि हंसि दीनी पीठि’, श्रीकृष्ण ने हंस कर स्वयं ही पीठ दिखा दी, खुद ही हार स्वीकार कर ली।

‘मैं प्रन लागि डराऊं’, मैं अपने भक्तों के प्रण से बहुत डरता हूँ।

देश

वा पटपीत की फहरानि।

कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बानि॥

रथ ते उतरि अवनि आतुर है, कचरज की लपटानि।

मानौं सिंह सैल तें निकस्यौ महामत्त गज जानि॥

जिन गुपाल मेरा प्रन राख्यौ मेटि वेद की कानि।

सोई सूर सहाय हमारे निकट भये हैं आनि॥

व्याख्या: हाथ में सुदर्शन चक्र लिये हुए वह तेजी से दौड़ना कोई कैसे भूल सकता है? वह शोभा ही निराली है। रथ से कूदकर भीष्म की ओर झपट रहे हैं। पीतांबर पहरा रहा है। अलकों में धूल लगी हुई है। श्रीकृष्ण उस समय ऐसे दिखाई देते हैं, मानो किसी महामदोद्धत गजेन्द्र पर कोई युद्ध केसरी आक्रमण कर रहा हो।



हमारे अन्य प्रकाशन

- * ऋगवेद
- * सामवेद
- * यजुर्वेद
- * अथर्ववेद
- * अष्टावक्र गीता
- * चाणक्य नीति
- * चाणक्य सूत्र
- * भूतहरि शतक
- * पंचतंत्र
- * हितोपदेश
- * विदुर नीति
- * तेनाली राम की कहानियां
- * लतीफ-ए-अकबर बीरबल
- * प्रेमचन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां
- * कबीर ग्रंथावली

स्वेट मार्टेन की अनमोल पुस्तकें

- * सफलता की खोज
- * सफलता की सीढ़ियां
- * धन कुवेर कैसे बनें ?
- * आत्मविश्वास आपकी जीत
- * अपना हाथ जगन्नाथ
- * प्रसन्नता की कुंजी
- * सौ वर्ष चिन्तामुक्त जियो
- * तनाव रहित जीवन
- * निरोगी काया हमारी पूंजी
- * मनोबल ही सुखी जीवन





सूरदास दोहावली

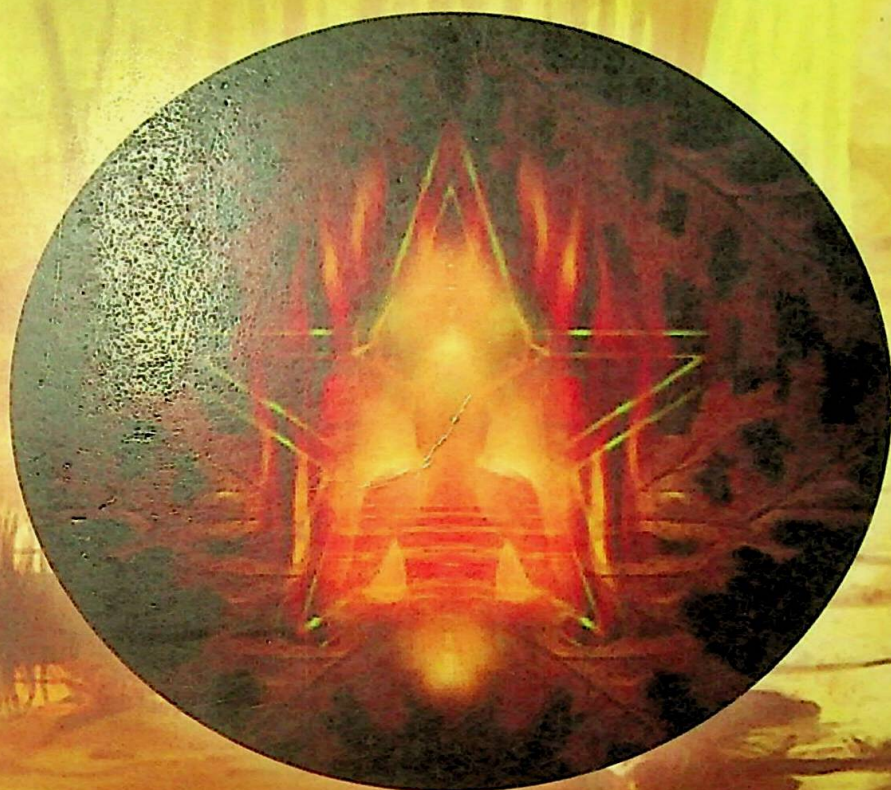
ब्रजभाषा के अमर भक्त कवि सूरदास को साहित्य का सूर्य कहा जाता है। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के इस परम कृपा-पात्र ने श्रीकृष्ण भक्ति भावना को जन-जन के हृदय में बसा दिया है। उनके भावना प्रधान वात्सल्य भाव प्रधान दोहों को पुस्तक में प्रमुखता से स्थान दिया गया है।

चरन कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै,
आंघर को सब कुछ दरसाई॥

एकमात्र वितरक

साहनी पब्लिकेशन्स

E-mail : sahni@sahnipublications.com



भारतीय विद्या प्रकाशन

5824, न्यू चन्द्रावल,
(नजदीक शिव मन्दिर), दिल्ली-110007

दूरभाष : (का.) 23851570
(मो.) : 9810910450

सी.के. 32/30, नेपाली सभरा,
वाराणसी-221001

दूरभाष : (का.) 0542-2392376
(मो.) : 09415202477

Email : bvpbooks@gmail.com